सद्गुरवे नमः

संत कबीर की विवेकधारा से अनुप्राणित

पारख प्रकाश

कबीर जयन्ती विशेषांक

वर्ष 52

जुलाई-अगस्त-सितम्बर
2022

अंक 1

ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, एकता तथा मानव-धर्म-प्रेरक हिन्दी पत्रिका

प्रवर्तक
सद्गुरु श्री रामसूरत साहेब
श्री कबीर मन्दिर, बड़हरा
पोस्ट—महोबाजार
जिला—गोंडा, उ०प्र०

आदि संपादक
सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब

संपादक
धर्मेन्द्र दास

आदि व्यवस्थापक
प्रेम प्रकाश

मुद्रक एवं प्रकाशक
गुरुभूषण दास

पारख प्रकाश इंटरनेट पर
www.kabirparakh.com

वार्षिक शुल्क : 60.00
एक प्रति : 16.00
आजीवन सदस्यता शुल्क
1600.00

विषय-सूची

कविता	लेखक	
खसम बिनु तेली को बैल भयो	सद्गुरु कबीर	
भूल गये	श्रीमती मीना जैन	44
दोहे	राधाकृष्ण कुशवाहा	64

स्तंभ

पारख प्रकाश / 2 व्यवहार वीथी / 14 परमार्थ पथ / 27
बीजक चिंतन / 35

लेख		
संत कबीर का समाज-दर्शन	प्रो. चमनलाल गुप्त	8
कबीर की सांस्कृतिक मनोभूमि	डॉ. रामचन्द्र तिवारी	17
जब अपवित्र विचार घेरते हैं	श्रीकृष्णदत्त जी भट्ट	23
मृत्यु निश्चित है	धर्मेन्द्र दास	39
शह भी आपकी, सफलता भी आपकी	श्री चन्द्रप्रभ जी महाराज	47
कर्मयोगी क़बीर	श्री भावसिंह हिरवानी	52
कबीर की दृष्टि में श्रमिकों का महत्त्व		57

लघुकथा		
दिल का टुकड़ा	दीनेन्द्र दास	22

कहानी		
क़ब्रों का विलाप	श्री खलील जिब्रान	29

आवश्यक सूचना

(पारख प्रकाश के शुल्क में वृद्धि)

पारख प्रकाश के सभी पाठकों से निवेदन है कि कागज की कीमत एवं पत्रिका छपाई की लागत में अत्यधिक वृद्धि होने के कारण इस जुलाई अंक से पारख प्रकाश के वार्षिक शुल्क एवं आजीवन सदस्यता शुल्क में वृद्धि की जा रही है। कृपया अपना शुल्क बढ़े हुए शुल्क के अनुसार प्रेषित करें—

एक प्रति : 16 रुपये, वार्षिक शुल्क : 60 रुपये, आजीवन सदस्यता शुल्क : 1600 रुपये

कबीर पारख संस्थान के प्रकाशन

सद्गुरु श्री कबीर साहेब कृत
बीजक मूल (छोटा)
बीजक मूल (बड़ा)
कबीर भजनावली (भाग-1)
कबीर भजनावली (भाग-2)
कबीर साखी
न्यायनामा (श्री निर्मल साहेब)
सद्गुरु श्री रामसूरत साहेब कृत
विवेक प्रकाश मूल
बोधसार मूल
रहनि प्रबोधिनी मूल
भजन प्रवेशिका (श्री निर्बंध साहेब)
सद्गुरु श्री विशाल साहेब कृत
विशाल वचनामृत
सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब कृत
बीजक टीका (अजिल्द)
बीजक व्याख्या : प्रथम खण्ड
बीजक व्याख्या : द्वितीय खण्ड
बीजक प्रवचन
कबीर बीजक शिक्षा
संत कबीर और उनके उपदेश
कहत कबीर
कबीर दर्शन
कबीर : जीवन और दर्शन
कबीर का सच्चा रास्ता
कबीर की उलटवांसियां
कबीर अमृतवाणी सटीक
कबीर : व्यक्तित्व और कर्तृत्व
कबीर पर शुक्ल और मेरी दृष्टि
कबीर कौन?
कबीर सन्देश
कबीर का प्रेम
कबीर साहेब
कबीर का पारख सिद्धांत
कबीर परिचय सटीक
पंचग्रंथी सटीक
विवेक प्रकाश सटीक
बोधसार सटीक
रहनि प्रबोधिनी सटीक
गुरुपारख बोध सटीक
मुक्तिद्वार सटीक
रामायण रहस्य
वेद क्या कहते हैं?
बुद्ध क्या कहते हैं ? (भाष्य)
मानसमणि
तुलसी पंचामृत
उपनिषद् सौरभ
योगदर्शन
गीतासार
वैदिक राष्ट्रीयता
श्री कृष्ण और गीता
मोक्ष शास्त्र
कल्याणपथ
ब्रह्मचर्य जीवन
बूंद बूंद अमृत
सब सुख तेरे पास
बसै आनंद अटारी
छाड़हु मन विस्तारा
घूंघट के पट खोल
हंसा सुधि करु अपनो देश
उड़ि चलो हंसा अमरलोक को
समुद्र समाना बुंद में
मेरी और ह्वेन सां की डायरी
बंदे करि ले आप निबेरा
शाश्वत जीवन
सहज समाधि
ज्ञान चौंतीसा
सपने सोया मानवा
ढाई आखर
धर्म को डुबाने वाला कौन?
समझे की गति एक है
धर्म और मजहब
जीवन का सच्चा आनंद
प्रश्नोत्तरी
पत्रावली
संसार के महापुरुष
फुले और पेरियार
व्यवहार की कला
स्त्री बाल शिक्षा
आप किधर जा रहे हैं?
स्वर्ग और मोक्ष
ऐसी करनी कर चलो
ये भ्रम भूत सकल जग खाया
सरल शिक्षा
जगन्मीमांसा
बुद्धि विनोद
हृदय के गीत
वैराग्य संजीवनी
भजनावली
आदेश प्रभा
राम से कबीर
अनंत की ओर
कबीरपंथी जीवनचर्या
अहिंसा शुद्धाहार
हितोपदेश समाधान
मैं कौन हूं?
ब्राह्मण कौन?
नास्तिक कौन?
श्री कृष्ण कौन?
संत कौन?
हिन्दू कौन?
जीवन क्या है?
ध्यान क्या है?
योग क्या है?
पारख समाधि क्या है?
ईश्वर क्या है?
अद्वैत क्या है?
जागत नींद न कीजै
सरल बोध
श्री राम लक्ष्मण प्रश्नोत्तर शतक
सत्यनिष्ठा (सटीक)
कबीर अमृत वाणी (बड़ी)
बुद्ध क्या कहते हैं? (सटीक)
गृहस्थ धर्म
कबीर खड़ा बजार में
सत्य की खोज
स्वभाव का सुधार
भूला लोग कहै घर मेरा
ऊंची घाटी राम की
शंकराचार्य क्या कहते हैं?
न्यायनामा (सटीक)
भवयान (सटीक)
विष्णु और वैष्णव कौन?
निर्मल सत्यज्ञान प्रभाकर
लाओत्ज़े क्या कहते हैं?
राम नाम भज लागू तीर
आत्मसंयम ही राम भजन है
आत्मधन की परख
वैराग्य त्रिवेणी
अष्टावक्र गीता
सुख सागर भीतर है
मन की पीड़ा से मुक्ति
अमृत कहाँ है?
तेरा साहेब है घट भीतर
महाभारत मीमांसा
धनी धर्म साहेब के अमृत उपदेश
पलटू साहेब की बानी
संत वाणी
बीजक टीका (मराठी अनुवाद)
ENGLISH TRANSLATION
Kabir Bijak (Commentary)
Eternal Life
Art of Human Behaviour—
Who am I?
What is Life?
Kabir Amritvani
The Bijak of Kabir (In Verses)
Kabir Bijak
(Elucidation Sakhi Chapter)
Saint Kabir and his Teachings
Life and Philosophy of Kabir
गुजराती अनुवाद
बीजक मूल
बीजक व्याख्या : भाग-1
बीजक व्याख्या : भाग-2
कबीर अमृतवाणी
अढ़ी अक्षर प्रेम ना
व्यवहारिनी कला
गुरु पारख बोध
स्त्री बाल शिक्षा
शाश्वत जीवन
ध्यान शुं छे?
हुं कोण छुं?
धर्म ने डुबारनार कोण?
जीवन शुं छे?
ईश्वर शुं छे?
कबीर सन्देश
श्री कृष्ण अने गीता
कबीर नो सांचो प्रेम
गुरुवंदना
संत कबीर अने अेमना उपदेश
कबीर : जीवन अने दर्शन
संत श्री धर्मेन्द्र साहेब कृत
कबीर के ज्वलंत रूप
सार सार को गहि रहे
सद्गुरु कबीर और पारख सिद्धांत
पूजिय विप्र शील गुण हीना
सबकी मांगे खैर
सुखी जीवन की कला
बूंद बूंद से घट भरे
सांचा शब्द कबीर का
सुखी जीवन का रहस्य
कबीर बीजक के रत्न
गुजराती अनुवाद
सुखी जीवन नी कला
सद्गुरु कबीर अने पारख सिद्धा
संत श्री अशोक साहेब कृत
पानी में मीन पियासी
धनी कौन?
बोध कथाएं
ज्यों की त्यों धरि दीन्ही चदरि
श्री राम दास कृत
सद्गुरु अभिलाष साहेब : जीव
और दर्पण
श्री भावसिंह हिरवानी कृत
कबीर (नाटक)
प्रेरक कहानियां
काया कल्प
समर्पण
बाल कहानियां
ना घर तेरा ना घर मेरा
जीवन का सच

R.N.I.'s Regd. No. 18528/71 Postal Regd. No. A.D. 253/2000

कबीर पारख संस्थान, प्रयागराज

का

पैंतालीसवां वार्षिक अधिवेशन

दिनांक—7-8-9 अक्टूबर 2022

दिन—शुक्रवार, शनिवार, रविवार

क्वार शुक्ल त्रयोदशी, चतुर्दशी एवं पूर्णिमा

स्थल–कबीर आश्रम, कबीर नगर, प्रयागराज

निवेदन

1. पारख प्रकाश प्रतिवर्ष जनवरी, अप्रैल, जुलाई एवं अक्टूबर में प्रकाशित होता है। यदि इन महीनों की आखिरी तारीख तक आपको अंक न मिले, तो इसकी शिकायत अवश्य भेजें, ताकि आपको दूसरी प्रति भेजी जा सके। देर से शिकायत मिलने पर दूसरी प्रति भेजने में हमें काफी असुविधा होती है।

2. आशा है यह पत्रिका आपके लिए रुचिकर, ज्ञानवर्धक एवं प्रेरणादायी सिद्ध हुई होगी तथा आगे भी आप इसके ग्राहक बने रहना पसन्द करेंगे और दूसरों को भी इसके ग्राहक बनने के लिए प्रेरित करेंगे। इसे अधिक स्थायी तथा नियमित बनाने के लिए आप स्वयं इसके आजीवन ग्राहक तो बनें ही दूसरों को भी आजीवन ग्राहक बनने के लिए प्रेरित करें।

3. यदि आपका शुल्क इस अंक के साथ समाप्त हो रहा है तो अगले अंक के लिए अपना शुल्क यथाशीघ्र भेज दें, जिससे अगला अंक आपको समय से मिल सके। पत्र तथा शुल्क भेजते समय अपना ग्राहक नं० अवश्य लिखें।

एक प्रति 16 रुपये | वार्षिक 60 रुपये | आजीवन 1600 रुपये

लेख, कविता, सदस्यता-शुल्क भेजने तथा सब प्रकार के पत्र व्यवहार का पता

पारख प्रकाश

संत कबीर मार्ग, प्रीतमनगर

प्रयागराज–211011 (उ. प्र.)

Vist us : www.kabirparakh.com

E-mail : kabirparakh@yahoo. com

ग्राहक नं०

कबीर पारख संस्थान के लिए गुरुभूषण दास द्वारा प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस, प्रा. लि., पन्नालाल रोड, प्रयागराज से मुद्रित

सद्गुरवे नमः

को हिन्दू को तुरुक कहावै, एक जिमी पर रहिये

—सन्त कबीर

पारख प्रकाश

समुझे की गति एक है, जिन्ह समुझा सब ठौर।
कहहिं कबीर ये बीच के, बलकहिं और कि और॥ बीजक, साखी 190॥

वर्ष 52] प्रयागराज, आषाढ़, वि. सं. 2079, जुलाई 2022, सत्कबीराब्द 624 [अंक 1

खसम बिनु तेली को बैल भयो॥ 1॥
बैठत नाहिं साधु की संगत, नाधे जन्म गयो॥ 2॥
बहि बहि मरहु पचहु निज स्वारथ, यम को दण्ड सह्यो॥ 3॥
धन दारा सुत राज काज हित, माथे भार गह्यो॥ 4॥
खसमहि छाँड़ि विषय रंग राते, पाप के बीज बोयो॥ 5॥
झूठी मुक्ति नर आश जीवन की, उन्ह प्रेत को जूँठ खयो॥ 6॥
लख चौरासी जीव जन्तु में, सायर जात बह्यो॥ 7॥
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो, उन श्वान को पूँछ गह्यो॥ 8॥

× × ×

बहुतक साहस करु जिय अपना। तेहि साहेब से भेंट न सपना॥ 1॥
खरा खोट जिन नहिं परखाया। चाहत लाभ तिन्ह मूल गमाया॥ 2॥
समुझि न परलि पातरी मोटी। ओछी गाँठि सबै भौ खोटी॥ 3॥
कहहिं कबीर केहि देहो खोरी। जब चलिहो झिझि आसा तोरी॥ 4॥

पारख प्रकाश

कबीर का समन्वय

चौदहवीं-पंद्रहवीं ईसवी सदी में जब कबीर साहेब का आविर्भाव हुआ था उस समय भारत में राजनीतिक रूप से मुसलमानों का दबदबा था और धार्मिक रूप में हिन्दुओं का। दोनों में मंदिर-मस्जिद, पूजा-नमाज, मत-मजहब को लेकर सांप्रदायिक दंगे हुआ करते थे, साथ-साथ राजनीतिक लड़ाइयां भी। हिन्दू-मुसलमान दोनों के अपने अवतार-पैगंबर थे और अपनी ईश्वरीय वाणी भी। इनको लेकर दोनों के अहंकार आसमान छू रहे थे। कबीर साहेब का हिन्दू-मुसलमान दोनों से संबंध था और उन्होंने दोनों की अच्छाइयों एवं बुराइयों को भलीभांति जाना-समझा-परखा था और दोनों के गलतियों एवं धार्मिक पाखण्ड को लेकर दोनों की खूब कड़े शब्दों में निर्भय होकर खंडन तथा आलोचना किया था। वे यह चाहते थे कि हिन्दू-मुसलमान दोनों अपने मत-मजहब जनित बाह्य कर्मकांड, पाखंड एवं कट्टरता को छोड़कर एक-दूसरे के निकट आयें और परस्पर भाईचारा, समता, एकता का व्यवहार करते हुए सब अपनी-अपनी श्रेणी-शक्ति-योग्यता के अनुसार सब दिशा में उन्नति करें।

लड़ाई-झगड़े, वैर-विरोध चाहे जमीन-जायदाद, रुपये-पैसे, गद्दी, महंती, पद-प्रतिष्ठा को लेकर हों चाहे पूजा-नमाज, मंदिर-मस्जिद, ईश्वर-खुदा जनित कर्मकांड, विश्वास एवं मान्यता को लेकर हों सदैव हानिकारी ही नहीं विनाशकारी होते हैं और समग्र मानवता के लिए पतनकारी भी। दुनिया के किसी कोने में रहने वाले हों और किसी मत-मजहब के मानने वाले हों मानव मात्र के सुख-शांति, उन्नति एवं कल्याण का मार्ग अहिंसा, प्रेम, सेवा, समता, एकता एवं भाईचारे का मार्ग ही है। कबीर साहेब सबके लिए यही मार्ग बताते हैं। वे कहते हैं—

हिन्दू तुरुक की एक राह है, सतगुरु सोई लखाई।
कहहिं कबीर सुनो हो संतो, राम न कहूँ खुदाई॥

(बीजक, शब्द 10)

अर्थात—हिन्दू-मुसलमान मानव मात्र के सुख-शांति-कल्याण का एक ही मार्ग है अहिंसा एवं प्रेम। इनको छोड़कर कोई भी मनुष्य सुख-शांतिपूर्वक न तो जीवन जी सकता है और न आध्यात्मिक उन्नति कर सकता है। हे संतो सुनो, घट-घट वासी चेतन-जीव को छोड़कर आकाश-पाताल में न कोई ईश्वर है और न कोई खुदा। ईश्वर-खुदा यदि बाहर है तो प्राणियों के रूप में है और अंदर हृदय में चेतन-जीव के रूप में। चलते-फिरते प्राणी ही सगुण-साकार परमात्मा, ईश्वर-खुदा है और घट-घट में विराजमान चेतन-जीव निर्गुण-निराकार परमात्मा है। बाहर प्राणी रूप में विराजमान सगुण-साकार परमात्मा की सेवा और प्रेमपूर्वक मधुर व्यवहार ही उनकी पूजा है और मन को सब तरफ से समेटकर तथा निर्मल-निर्विकार बनाकर अंतर्मुख-आत्मलीन कर लेना ही निर्गुण-निराकार चेतन-जीव रूप परमात्मा की पूजा-इबादत है। और यही सबके लिए सुख-शांति-कल्याण का मार्ग है।

विभिन्न मत-मजहब-संप्रदायों में परस्पर जो विरोध दिखाई देता है वह शब्दों की भिन्नता तथा पूजा-पाठ तर्के-इबादत को लेकर है। यदि शब्दों तथा बाह्य कर्मकाण्ड की भिन्नता को महत्त्व न देकर मूल तथ्य को देखें तो पूजा-नमाज, प्रार्थना-इबादत का अर्थ है अपने इष्ट के प्रति समर्पण। भाषा भिन्न होने से शब्दों में भिन्नता होना तथा मान्यता, रुचि एवं संस्कार भिन्न होने से पूजा-नमाज के तरीके में भिन्नता होना स्वाभाविक है। प्रश्न यह है कि शब्दों तथा पूजा-नमाज के तरीके की भिन्नता को लेकर परस्पर एक दूसरे के प्रति मन में विरोध, शत्रुता एवं कटुता का भाव बनाकर अशांति में जीना समझदारी है या शब्दों तथा पूजा-नमाज के तरीके की भिन्नता को हटाकर अपने-अपने इष्ट के प्रति हृदय के समर्पण-भाव को दृष्टिगत रखकर परस्पर एक दूसरे

के प्रति प्रेम-समता-एकता-मैत्री भाव रखकर शांति-सुख से जीना समझदारी है। सारी लड़ाइयां तो शब्दों की भिन्नता एवं तर्के-इबादत को लेकर ही हैं और यदि धार्मिक कहे जाने वाले ही एक-दूसरे के विरोधी बनकर परस्पर लड़ रहे हों तो क्या ये अपने-अपने धर्म एवं ईश्वर-अल्लाह को समझ सके हैं। अपने-अपने ईश्वर-अल्लाह को बड़ा मानकर तथा अपने-अपने धर्मग्रंथों को ईश्वर-वाणी मानकर उनके अहंकार के पुतले बने इन पागलों से प्रश्न करते हुए कबीर कहते हैं—

भाई रे दुइ जगदीश कहां ते आया, कहु कौने बौराया।
अल्लाह राम करीमा केशव, हरि हजरत नाम धराया॥
गहना एक कनक ते गहना, यामें भाव न दूजा।
कहन सुनन को दुइ कर थापे, एक निमाज एक पूजा॥
वोही महादेव वोही महम्मद, ब्रह्मा आदम कहिये।
को हिन्दू को तुरुक कहावै, एक जिमी पर रहिये॥
वेद कितेब पढ़ै वै कुतबा, वै मोलना वै पाँड़े।
बेगर बेगर नाम धराये, एक मिट्टी के भाँड़े॥

(बीजक, शब्द 30)

जो लोग धर्म के चोंगे पहनकर अपने को राम-रहीम, ईश्वर-खुदा के बंदे-भक्त मानते हैं, और राम-रहीम, ईश्वर-खुदा का नाम लेकर थोड़ी-थोड़ी बातों को लेकर लड़ते-झगड़ते रहते हैं, उन्हें मनुष्य भी कैसे कहा जाये। ये लोग मानो मनुष्य की खाल ओढ़कर बैल घुम रहे हैं, क्योंकि जो सच्चा मनुष्य होगा या जिनके अंदर धर्म की थोड़ी भी समझ होगी वह धर्म और राम-रहीम को लेकर कभी किसी से लड़ाई-झगड़ा नहीं करेगा। ये लोग जबान से भले ही राम-रहीम कहते हों, परन्तु ये राम-रहीम के रास्ते अर्थात दया-रहम के रास्ते से भटककर शैतान के रास्ते अर्थात क्रूरता और हिंसा के रास्ते पर चल रहे हैं। इसीलिए कबीर साहेब को कहना पड़ा—

रामहिं सुमिरे रण भिरे, फिरै और की गैल।
मानुष केरी खोलरी, ओढ़े फिरत हैं बैल॥

(बीजक, साखी 284)

जिन्हें धर्म और अध्यात्म की समझ है ही नहीं, जिनकी दृष्टि शरीर और इंद्रिय-भोग-सुख तक ही सीमित है उनकी बात तो छोड़िये, परन्तु जिन्हें धर्म और अध्यात्म की थोड़ी भी समझ है, जो यह मानते हैं कि शरीर से अलग एक ऐसी सत्ता है जो अजर-अमर-अविनाशी है, यदि वे धर्म और ईश्वर का नाम लेकर लड़ते हों तो उन्हें क्या कहा जाये। कैसे माना जाये कि वे धार्मिक हैं और राम-रहीम, ईश्वर-खुदा के भक्त-बंदे हैं!

कबीर साहेब की यह तमन्ना थी कि मनुष्य कैसे अपने बनाये सांप्रदायिक अहंमन्यता के घरौंदे से बाहर निकलकर विशाल-विराट सत्य को तथा सच्चे राम-रहीम, ईश्वर-खुदा को समझे और हिंसा-हत्या के मार्ग को छोड़कर भाईचारा, प्रेम, एकता-समता के मार्ग पर चलकर इसी धरती को स्वर्ग बनाये। इसीलिए वे सभी मत के विवेकियों को मूल सत्य तत्त्व को समझने के लिए आमंत्रित करते हुए कहते हैं—

पण्डित देखहु हृदय विचारी, को पुरुषा को नारी।
सहज समाना घट घट बोलै, वाके चरित अनूपा।
वाको नाम काह कहि लीजै, न वाके वर्ण न रूपा॥
तैं मैं क्या करसी नर बौरे, क्या मेरा क्या तेरा।
राम खुदाय शक्ति शिव एकै, कहु धौं काहि निहोरा॥
वेद पुराण कितेब कुराना, नाना भाँति बखाना।
हिन्दू तुरुक जैनि और योगी, ये कल काहु न जाना॥
छौ दर्शन में जो परवाना, तासु नाम मनमाना।
कहहिं कबीर हमहिं पै बौरे, ई सब खलक सयाना॥

(बीजक, शब्द 48)

हे पण्डितो! विवेकियो! अपने हृदय में विचारकर देखो कि कौन स्त्री है और कौन पुरुष है! स्त्री और पुरुष के शरीर के कुछ अंगों में फर्क है, परन्तु जिन तत्त्वों से स्त्री और पुरुष का शरीर बना है न तो वे मिट्टी, पानी, आग, हवा जड़ तत्त्व स्त्री-पुरुष हैं और न दोनों के शरीर में विराजमान चेतन जीव स्त्री-पुरुष हैं और वह चेतन-जीव सहज-स्वाभाविक रूप से एक समान सभी घटों-शरीरों में समाया हुआ है और अपने-अपने खानि स्वभाववश क्रिया कर रहे हैं तथा घट-शरीर की योग्यता के अनुसार अपने ज्ञान-प्रकाश को प्रदर्शित कर रहे हैं। उस चेतन-जीव का लक्षण जड़-तत्त्वों से सर्वथा

विलक्षण है और उसके समान वह ही है। उस चेतन-जीव का न कोई रंग है और न कोई रूप। रूप-रंग, आकार-प्रकार शरीर का होता है चेतन-जीव का नहीं, फिर उसे क्या नाम लेकर पुकारोगे। फिर मैं हिन्दू हूं, मैं मुसलमान हूं, मैं स्त्री-पुरुष हूं, मैं दीनदार-आस्तिक हूं तुम नास्तिक हो कहकर क्या मेरा-तेरा कर रहा है। राम, खुदा, शक्ति, शिव आदि एक ही चेतन-सत्ता के नाम हैं, फिर इनमें किस एक को बड़ा मानकर उसकी पूजा-उपासना की जाये और शेष को छोटा मानकर उन्हें छोड़ दिया जाये। उसी एक चेतन-सत्ता का वेद, पुराण, कितेब-कुरान में अनेक ढंग से वर्णन-व्याख्यान किया गया है। कहने-वर्णन करने के ढंग अलग-अलग होने से मूल सत्य तत्त्व अलग-अलग नहीं हो जायेगा, वह तो वही का वही रहेगा, परन्तु हिन्दू, मुसलमान, जैनी, योगी आदि अनेक मत-मजहब के अनुयायी अपने-अपने धर्मग्रंथों-शास्त्रों में वर्णित बातों को ही सही मानकर अनेकता में एकता की मधुरता को नहीं समझ पा रहे हैं। छह दर्शनों के धर्मग्रंथों में जो कुछ लिख दिया गया है उन्हीं को प्रामाणिक मानकर नाना मतों के अनुयायी अपने-अपने को ही एकमात्र स्वर्ग, जन्नत, मोक्ष के ठेकेदार मानकर उनके अहंकार में डूबे हुए हैं और हम जैसों को जो अनेकता में एकता, समन्वय स्थापित करने का प्रयास करते हैं उन्हें ये लोग पागल समझते हैं और हमारी बातों पर ध्यान नहीं देते।

धर्म के नाम पर चलने वाले जितने भी मत-मजहब, पंथ-संप्रदाय हैं उनमें परस्पर जो मतवाद, कलह, लड़ाई-झगड़े हैं और एक दूसरे के प्रति कटुता, अहं-हीनत्व की भावना है वह या तो पूजा-नमाज, कर्मकांड के तरीकों में अंतर को लेकर है या मरने के बाद कौन स्वर्ग-बिहिश्त में जायेगा और कौन नरक-दोजख में या किसका मोक्ष होगा और कौन बंधन में पड़ा रहेगा इस बात को लेकर है। स्वर्ग-नरक या बिहिश्त-दोजख का जितना भी और जैसा भी वर्णन है वह सब किताबी है और काल्पनिक है। यदि दुर्जन-तोष-न्याय यह मान लिया जाये कि इस धरती से बाहर अलग कहीं आकाश-पाताल में स्वर्ग-नरक है तो इस धरती का कोई भी मनुष्य न तो वहां जाकर वहां की स्थिति देखकर आया है और न वहां रहने वालों में से कोई आकर वहां का हाल बताया है। धरती पर रहने वाले मनुष्यों ने ही स्वर्ग-नरक का काल्पनिक नक्शा चित्रित किया है। नाना मतों के अनुयायी अपने-अपने ढंग से अपने-अपने रीति-रिवाज-मान्यता के अनुसार पूजा-पाठ, रोजा-नमाज, प्रार्थना करते हुए एक दूसरे के साथ दया, क्षमा, समता, एकता तथा प्रेम-विश्वास पूर्वक व्यवहार करने लगें और कोई किसी का किसी प्रकार विरोध न करे तो यह धरती ही स्वर्ग बन जायेगी। आखिर, यहां कौन पराया है, सभी तो अपने हैं। शारीरिक दृष्टि से देखें तो सभी मनुष्य हैं और आत्मिक दृष्टि से देखें तो सभी शुद्ध-निर्मल, साफ-पाक, अजर-अमर जीव, चेतन, आत्मा, रूह हैं। चाहे शारीरिक दृष्टि से देखें चाहे आत्मिक दृष्टि से सब सजातीय हैं। यहां विजातीय कोई है ही नहीं। सद्गुरु कबीर कहते हैं—

जेते औरत मर्द उपाने, सो सब रूप तुम्हारा।
कबीर पोंगरा अल्लह राम का, सो गुरु पीर हमारा॥
(बीजक, शब्द 97)

दुनिया में जन्म लेकर आने वाले सभी स्त्री-पुरुष तुम्हारे सजातीय भाई-बहिन हैं। जैसे तुम मनुष्य हो वैसे वे भी मनुष्य हैं। प्रकृति ने, कुदरत ने या तुम्हारे माने गये राम-रहीम, ईश्वर-अल्लाह ने सब को एक समान ही पैदा किया है। और जिन्हें तुम अपने ईश्वर-भगवान के पोंगरा अर्थात पुत्र, अवतार, पैगंबर मानते हो उन सब को मैं अपना गुरु-पीर मानता हूं। जैसे तुम अपने इष्ट को आदर देते हो वैसे ही दूसरों के इष्ट को आदर देना शुरू कर दो तो कहीं कोई विवाद है ही नहीं।

घट-घट निवासी चेतन जीव, रूह, सोल, आत्मा से अलग ईश्वर, परमात्मा, खुदा, गॉड, अल्लाह मानने वाले जितने भी हैं सब यही मानते हैं कि एक समय ऐसा था जब यह दुनिया, यह सृष्टि थी ही नहीं। हमारे ईश्वर-परमात्मा, खुदा, गॉड, अल्लाह ने इसकी सृष्टि की, उसी ने यह दुनिया बनायी। यदि यह बात सत्य है तो जिन बाहरी पूजा-नमाज, मंदिर-मस्जिद, वेद-कितेब, अवतार-पैगंबर, स्वर्ग-नरक आदि बातों को लेकर तुम परस्पर लड़ रहे हो, यह सब भी तो उस समय नहीं थे। यह सब तो बाद में बनाये गये हैं और इनके बनाने वाले

या कल्पना करने वाले तुम हो। तुम्हारे ख्याल से सृष्टि के पहले केवल तुम्हारे ईश्वर-परमात्मा, अल्लाह-खुदा ही था, तब तुम सीधे सरल ढंग से उसी का नाम लो और उसी का ही भजन करो। बाहरी कृत्रिम बातों को लेकर लड़ते क्यों हो। कबीर साहेब इसी बात पर लोगों का ध्यान आकर्षित करते हैं और बाह्य कृत्रिम कर्मकाण्ड को प्रमुखता देकर लड़ने वालों से पूछते हैं—

आव बे आव मुझे हरिको नाम, और सकल तजु कौने काम।
कहाँ तब आदम कहाँ तब हव्वा, कहाँ तब पीर पैगम्बर हुवा।
कहाँ तब जिमी कहाँ असमान, कहाँ तब वेद कितेब कुरान।
जिन दुनिया में रची मसीद, झूठा रोजा झूठी ईद।
साँचा एक अल्लह को नाम, जाको नइ नइ करो सलाम।
कहुँधौं बिहिस्त कहाँ ते आई, किसके कहे तुम छुरी चलाई।
कर्ता किरतम बाजी लाई, हिन्दू तुरुक की राह चलाई।
कहाँ तब दिवस कहाँ तब राती, कहो तब किरतम किन उतपाती।
नहिं वाके जाति नहीं वाके पाँती, कहहिं कबीर वाके दिवस न राती।

(बीजक, शब्द 98)

हे भाई! मेरे ख्याल से तो तुम सीधे-सादे सरल-विनम्र होकर उस हरि, ईश्वर, अल्लाह का ही नाम लो, उसी का भजन-पूजन, इबादत करो। और सब बाहरी बातों को छोड़ दो। ये सब तुम्हारे काम नहीं आयेंगे। तुम कहते हो कि एक समय ऐसा था जब दुनिया नहीं थी, उस समय केवल ईश्वर या खुदा ही था, तब यह बताओ उस समय तुम्हारे आदम और हव्वा कहां थे? साथ ही उस समय तुम्हारे पीर-पैगंबर, अवतार भी कहां थे। उस समय जमीन और आसमान कहां थे और तुम्हारे वेद-कितेब-कुरान भी तब कहां थे? जिन्होंने दुनिया में मंदिर-मस्जिद बनाये वे भी उस समय कहां थे? सच पूछा जाये तो तुम्हारा रोजा और ईद भी व्यर्थ है। सच्चा तो एक अल्लाह-ईश्वर का नाम है, जिसको तुम रोज झुक-झुककर सलाम-प्रणाम करते हो। यह बताओ, तुम्हारे ये बिहिश्त-ईश्वर कहां से आ गये जिसको पाने के लिए तुम कुर्बानी और बलि कहकर मासूम-निरीह प्राणियों की हत्या करते हो? और किसके कहने से तुम मासूम-निर्दोष प्राणियों की गर्दन पर छूरी चलाते हो? ये सारे कृत्रिम कर्मकांड और आडंबर तो तुम्हारे अपने बनाये हैं, परंतु भोले-भाले लोगों को भरमाने-भटकाने के लिए तुम इन्हें ईश्वर द्वारा चलाया हुआ बताते हो। यह तो ईश्वर के नाम पर छलावा हुआ और इसी छलावा में हिन्दू-मुसलमान तथा अनेक मत-मजहब चलाये गये और मूल बात मनुष्यता-इंसानियत को भुला दिया गया। सृष्टि के पहले न तो दिन था और न रात थी, तब ये बनावटी बातें तथा अनेक प्रकार के आडंबरी कर्मकांड किसने बनाया? जिसे तुम अपना परम प्रेमास्पद, पूज्य मानते हो उस ईश्वर-खुदा में या घट-घट में विराजमान आत्मतत्त्व में न कोई जाति है न कोई पांति है और न उसमें दिन है और न रात है। वह तो सारे भेदभाव से रहित शुद्ध-बुद्ध एकरस है।

सद्गुरु कबीर आगे और कहते हैं—

जहिया किर्तम ना हता, धरती हती न नीर।
उत्पति परलय ना हती, तबकी कहैं कबीर॥

(बीजक, साखी 203)

मान लो एक समय ऐसा था जब यह कृत्रिम जगत नहीं था, धरती और पानी नहीं थे, उत्पत्ति और प्रलय, जन्म और मृत्यु नहीं थे तब तुम्हारे आज के माने हुए भेदभाव कहां थे, जिनको लेकर तुम एक दूसरे की जान के दुश्मन बने हुए हो।

एक तरफ तो सारे मतावलंबी यही मानते हैं कि इस संसार की सृष्टि हमारे ईश्वर-खुदा-गॉड ने की है और दूसरी तरफ अपने बनाये भेदभाव मंदिर-मस्जिद, पूजा-नमाज, वेद-कितेब, जनेऊ-सुन्नत, स्वर्ग-नरक आदि को शाश्वत-अजर-अमर मान लेते हैं, और इनके नाम पर एक दूसरे से लड़ते-झगड़ते रहते हैं।

वस्तुतः मिट्टी, पानी, आग, हवा सारे जड़तत्त्व एवं चेतन जीव अनादि-अनंत हैं। जड़तत्त्वों के अपने स्वभावसिद्ध गुण-धर्मों से जगत प्रवहमान अनादि-अनंत है और चेतन-जीव अपने कर्मानुसार नाना योनियों में शरीर धारणकर अनादिकाल से जन्म-मरण के प्रवाह में पड़ा हुआ है। इनको सुख-दुख देने वाला कोई नहीं है। हर जीव अपने कर्मानुसार सुख-दुख का स्वयं कर्ता-भोक्ता है।

एक ओर तो सभी ईश्वरवादी मतावलंबियों की मान्यता है कि ईश्वर-खुदा-गॉड एक है, परंतु ऐसा मानते

हुए भी सभी मतावलंबियों ने अपना-अपना एक अलग ईश्वर-अल्लाह बना लिया है। और अपने-अपने बनाये ईश्वर-अल्लाह से अपने-अपने ढंग से बातें कहलवाकर उनको ही परम सत्य मान लिया। मूल सत्य जड़-चेतन की अनादिता एवं उनके गुण-धर्मों पर कोई ध्यान नहीं दे रहा है।

सारी लड़ाइयां कृत्रिम-बनावटी कर्मकांड एवं मन की मान्यताओं को लेकर हैं। मन की मान्यताओं से ऊपर उठकर ही परम सत्य को समझा जा सकता है।

कबीर साहेब की एक ही चिंता थी और इसी बात के लिए वे जिंदगी भर जूझते रहे कि मनुष्य जाति-पांति, मत-मजहब, वर्ण-वर्ग जनित सारे भेदभावों से ऊपर उठकर कैसे सत्य तत्त्व को समझे और कैसे परस्पर प्रेम, एकता, समता का व्यवहार कर इस धरती को ही स्वर्गमय बनाये। उन्होंने जाति-पांति तथा धार्मिक आडंबरों एवं पाखंडों का जो खुलकर खंडन किया उसमें उनका मूल उद्देश्य भी यही था कि मनुष्य अपने बनाये वर्ण-जाति, मत-मजहब के संकीर्ण घरौंदों से बाहर निकलकर तथा धर्म-ईश्वर के नाम पर चलाये गये आडंबरों एवं पाखंडों को छोड़कर एक दूसरे के निकट आये और इंसानियत और सच्चे धर्म को समझकर अपने जीवन-लक्ष्य आत्मशांति, आत्मसंतुष्टि को प्राप्त करे। आखिर इसी के लिए तो वह ईश्वर-अल्लाह की मान्यता कर उसकी पूजा-इबादत करता है और अनेक प्रकार के कर्मकांडों द्वारा उसे खुश करने का प्रयास करता है।

कबीर साहेब के सामने हिन्दू-मुसलमान ये दो धार्मिक मत ही थे और इन्हीं दोनों के अनुयायियों के बीच उनका जीवन-यापन हुआ था और इन दोनों मतों के मानने वाले कबीर साहेब से जुड़े हुए थे। कबीर साहेब चाहते थे कि दोनों मतों के लोग एक दूसरे के निकट आयें और अपने-अपने मतों की बुराइयों-कमियों को छोड़कर एक दूसरे की अच्छाइयों को जाने-समझें तथा ग्रहण करें, परंतु ऐसा न तब हो सका था न आज हो पा रहा है। बल्कि दोनों मतों के लोग एक दूसरे की कमियों-बुराइयों को ही देखते रहे और आज भी देख रहे हैं। दुर्भाग्य है कि बात-बात में ईश्वर-खुदा की दोहाई देने वाले लोगों की दृष्टि मिलनबिन्दु पर नहीं अपितु विभाजक रेखा पर रही है। और विभाजक रेखा की जिन बिन्दुओं पर लोग जोर देते रहे और दे रहे हैं वे सब बनावटी एवं कृत्रिम हैं। वे किसी ईश्वर-खुदा द्वारा स्थापित नहीं अपितु लोगों के मन की मान्यताएं हैं। मान्यताएं बड़ी हो गयीं और सत्य छोटा हो गया। जहां तक मन की मान्यताएं एवं मन का विस्तार है वहां तक द्वंद्व है, कलह है, विवाद है और झगड़ा है। द्वंद्व, कलह एवं विवाद में उलझकर सत्य तत्त्व-वास्तविकता को नहीं समझा जा सकता। उसके लिए तो मन की मान्यताएं एवं मन के विस्तार से ऊपर उठना होगा। कबीर साहेब उसी के लिए आह्वान करते हुए कहते हैं—

अवधू छाड़हु मन विस्तारा।
सो पद गहो जाहि ते सद्गति, पारब्रह्म सो न्यारा।
नहीं महादेव नहीं महम्मद, हरि हजरत कछु नाहीं।
आदम ब्रह्मा नहिं तब होते, नहीं धूप नहिं छाहीं।
असी सहस पैगंबर नाहीं, सहस अठासी मूनी।
चन्द्र सूर्य तारागण नाहीं, मच्छ कच्छ नहिं दूनी।
वेद कितेब सुमृत नहिं संजम, नहिं जीवन परिछाँही।
बाँग निमाज कलमा नहिं होते, रामहु नाहिं खुदाई।
आदि अन्त मन मध्य न होते, आतश पवन न पानी।
लख चौरासी जीव जन्तु नहिं, साखी शब्द न बानी।
कहहिं कबीर सुनो हो अवधू, आगे करहु विचारा।
पूरण ब्रह्म कहाँ ते प्रगटे, कृत्रिम कीन्ह उपराजा।

(बीजक, शब्द 22)

हे अवधूतो! त्यागियो! तुम मन के विस्तार अर्थात मान्यताओं-कल्पनाओं को छोड़ दो और उस पद, अपने आत्मस्वरूप, को ग्रहण करो जिससे तुम्हें आत्मशांति, आत्मतृप्ति के साथ सारे दुखों-बंधनों से छुटकारा मिले। यह आत्मस्थिति तुम्हारे माने गये परब्रह्म परमात्मा, ईश्वर-अल्लाह से परे है। जिन बातों को लेकर तुम आपस में लड़ते-झगड़ते हो, वह सब तुम्हारे मन की मान्यताएं हैं और तुम जिंदगी भर इसी में उलझे रह जाते

हो। जब तुम मन के विस्तार एवं मन की मान्यताओं को छोड़कर अपने मूल स्वरूप में स्थित हो जाओगे उस दशा में न वहां महादेव हैं और न मुहम्मद, न हरि है न हजरत, न आदम है न ब्रह्मा, न वहां धूप है न छाया है। न वहां अस्सी हजार पैगंबर हैं और न अट्ठासी हजार ऋषि-मुनि हैं। न वहां चांद है न सूर्य और न तारे। वहां मत्स्य, कच्छप आदि अवतार नहीं हैं। वहां वेद, कितेब, स्मृतियां एवं संयम नहीं हैं और न किसी अन्य जीव-जन्तुओं के होने की गुंजाइश है। न वहां बांग, नमाज, कलमा है और न राम एवं खुदा है, न वहां आदि-अंत, मध्य की बात है और न अग्नि, पवन और पानी है। वहां न चौरासी लाख जीव-जंतु हैं न साखी, शब्द तथा किसी प्रकार की कोई वाणी है। अपने मूल चेतन अस्तित्व की बात से हटकर यदि तुम किसी दूसरे पूर्ण ब्रह्म की कल्पना करते हो तो यह बताओ कि उसको किसने बनाया। अतः मन की सारी मान्यताओं को छोड़कर मूल बात पर ध्यान दो।

मूल तत्त्व किसी मत-मजहब की देन नहीं है और न वह किसी वेद-कितेब, पूजा-नमाज में सीमित है। उसको जो जिस शब्द से व्यक्त करना चाहता है और जिस रूप में याद करना चाहता है, करने दो। शब्दों को और बाह्य रूप-रेखा को लेकर लड़ने की आवश्यकता नहीं है। मूल तत्त्व, मूल सत्य आत्मस्वरूप को समझने के लिए सारे संस्कारों-मान्यताओं की चादर को उतार फेंकना होगा। जब बाह्य सारी मान्यताओं, कल्पनाओं, इच्छाओं, संकल्पों को छोड़कर मन पूर्ण शांत हो गया तब वहां न कोई नाम रह गया, न रूप, न कोई शब्द, न कोई दृश्य प्रपंच। धर्म के नाम पर चलने वाली सारी लड़ाइयां नाम, रूप, शब्द आदि बाह्य कर्मकांड को लेकर हैं।

चाहे हिन्दू हो चाहे मुसलमान चाहे अन्य मतावलंबी सभी ईश्वरवादी यह मानते हैं कि ईश्वर-परमात्मा, खुदा-गॉड, अल्लाह सर्वत्र व्याप्त है, कोई जगह उससे खाली नहीं है। यदि यह बात सच है तो फिर उसे किसी मत-मजहब, नाम-रूप, पूजा-नमाज, कर्मकाण्ड में सीमित कैसे किया जा सकता है। सर्वत्र व्याप्त ईश्वर-अल्लाह को किसी मत-मजहब, वेद-किताब, नाम-रूप में सीमित कर उतने को ही सत्य मानना, दूसरे नाम-रूप आदि को नकार देना अपने ही ईश्वर-अल्लाह को न समझना है। नाना मत-मतांतरों में परस्पर जो राग-द्वेष, लड़ाई-झगड़ा दिखाई पड़ते हैं वह किसी ईश्वर-अल्लाह के लिए नहीं है किन्तु वह सिर्फ और सिर्फ अपने अहंकार की पुष्टि के लिए है कि हम दूसरों से बड़ा ईश्वर भक्त, सच्चा धार्मिक हैं और केवल हम ही उस ईश्वर-अल्लाह को समझ सके हैं और केवल हम ही उन तक पहुंच सके हैं। कहना न होगा कि गले तक अहंकार में डूबे इन ईश्वर-अल्लाह के भक्तों-बंदों को ईश्वर-अल्लाह की जरा भी समझ नहीं है। जो भी सच्चा ईश्वर-भक्त, खुदा का बंदा होगा उसमें किसी प्रकार के अहंकार एवं कटुता-क्रूरता की कोई गुंजाइश नहीं होगी। वह तो अत्यंत विनम्र, सरल, उदार और दयालु होगा। उसके मन में किसी के लिए राग-द्वेष का भाव नहीं होगा क्योंकि वह सब में अपने ईश्वर-अल्लाह को देखेगा फिर वह किससे राग करेगा और किससे द्वेष करेगा।

नाना धार्मिक मतों के अनुयायी अपने-अपने मत के अनुसार पूजा-पाठ धार्मिक अनुष्ठान करते हुए तथा दूसरे मतों की बातों को आदर देते हुए एक दूसरे की अच्छाइयों को समझकर उनका अनुसरण करने लगें तो कहीं भी लड़ने-झगड़ने की स्थिति नहीं आयेगी। कबीर साहेब यही चाहते थे और दुनिया के सभी महापुरुषों का यही प्रयास रहा है कि लोग आपसी मतभेद भुलाकर एक दूसरे के साथ प्रेम, समता-एकता पूर्वक व्यवहार करें जिससे यह धरती ही स्वर्ग बन जाये। जो लोग अपने प्रेमपूर्ण मधुर व्यवहार से धरती को स्वर्ग नहीं बना सकते, मरने के बाद उनकी स्वर्ग जाने की आशा कभी पूरी नहीं होगी और जो लोग मनुष्य के साथ मनुष्यता का, इंसानियत का व्यवहार नहीं कर सकते न वे किसी ईश्वर-खुदा को समझ सकते हैं और न उसे पा सकते हैं।

—धर्मेन्द्र दास

संत कबीर का समाज-दर्शन

लेखक—प्रो. चमनलाल गुप्त

संत कबीर के व्यक्तित्व में साधक, साहित्यकार और समाज द्रष्टा के तीन रूप एक साथ दिखाई पड़ते हैं। कबीर का शाब्दिक अर्थ ही 'महान' है। शायद इसीलिए विद्वानों ने अपनी-अपनी रूचि के अनुसार उनकी महानता का संधान कहीं पर महान साधक संत के रूप में किया, कहीं पर उन्हें हिन्दी का प्रथम कवि एवं महानतम जन-साहित्यकार घोषित किया और कहीं पर उन्हें समाज-द्रष्टा और दलित-शोषित मानवता का मसीहा चित्रित किया। कबीर की साधना, साहित्य और समाज-दर्शन को समझने की मूल कुंजी क्या है? उनके व्यक्तित्व की मूल-प्रेरणा क्या है, इसपर विचार करके ही हम उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व का सही आकलन प्रस्तुत कर सकते हैं।

महात्मा कबीर का आविर्भाव तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी में काशी में हुआ।[1] काशी एक ओर भारत की सांस्कृतिक-धार्मिक राजधानी थी जिसके पण्डितों द्वारा दी गई व्यवस्था पूरे देश को मान्य होती थी दूसरी ओर व्यापार का बड़ा केन्द्र थी तथा आध्यात्मिक, सांसारिक ज्ञान की गंगा भी यहां बहती थी। देश-विदेश के विद्वान अपने ज्ञान की प्रामाणिकता का आधार यहां के पंडितों की स्वीकृति में खोजते थे। इसके साथ ही काशी सामंती समाज की पूर्ण विकृतियां को भी समेटे हुए थी।[2] यहां पण्डों, ठगों तथा रांड़ और सांड़ को लेकर कही गई उक्तियां यहां फैले व्यभिचार, रूढ़िवादिता, अन्धविश्वास, जड़ता एवं धर्मान्धता की सूचक थीं। ऐसे परिवेश में कबीर ने आंख खोली। समाज के निम्नतम सोपान पर खड़ा बालक कबीर[3] इस तीर्थ नगरी की सभ्यता और संस्कृति के महलों, मंदिरों और मीनारों को भी देख रहा था और इसके घाटों, गली-मुहल्लों तथा चौराहों पर फैले व्यभिचार, शोषण, कुरूपता की दुर्गन्ध को भी झेल रहा था।

कबीर के व्यक्तित्व का निर्माण जिन विस्फोटक परमाणुओं से हुआ उनमें कबीर को एक क्रान्तिकारी समाज-द्रष्टा बनाने की क्षमता मौजूद थी। कबीर का साहित्यकार और साधक रूप उनकी गहन समाज-सम्पृक्ति और मानव मात्र से जुड़ने की ललक का परिणाम है। कबीर की साधना सामूहिक सामाजिक मुक्ति के लिए है और उनका साहित्य मानव मात्र को मुक्त कराने के लक्ष्य से प्रेरित है। मानव मुक्ति का संधान उन्होंने सामाजिक जीवन में सहजता, सत्यता एवं शुचिता लाकर करना चाहा। सामाजिक जीवन में स्थिरता लाने के लिए उन्होंने जिन आध्यात्मिक, व्यावहारिक जीवन मूल्यों की स्थापना की वे निश्चय ही हमारी गतिशील परम्परा और उनकी क्रान्तिकारी प्रतिभा की रगड़ से उपजे थे।

कबीर उस मध्ययुग की उपज थे जिसमें जीवन अनिवार्य रूप से धर्म द्वारा परिचालित होता है। समाज-व्यवस्था धर्म-व्यवस्था का ही अभिन्न अंग होती है। सामंती समाज में वर्ण-व्यवस्था किसी न किसी रूप में रहेगी ही। एक ओर पीढ़ी दर पीढ़ी ज्ञान और वैभव, उच्च वंशीय परम्पराओं और विशिष्ट जीवन शैली का अभिमानी तथा उच्च पदों पर आसीन सामंत वर्ग रहता है जिसकी छत्रछाया में पंडित, पुरोहित, मुल्ला, काजी तथा अन्य बुद्धिजीवियों का वर्ग चलता है।[4] दूसरी ओर साधारण किसान और कारीगर, छोटे-मोटे दुकानदार और समाज के दीन-हीन लोग होते हैं जो उच्च वर्ग द्वारा शोषित और पीड़ित होते हैं और निम्न वर्ग में जन्मे व्यक्ति को छूने या इसके पास से भी गुज़रने पर दण्ड

---

1. कबीर साहित्य की परख, परशुराम चतुर्वेदी, भारती भण्डार, इलाहाबाद, पृष्ठ 268।
2. सबद, पृष्ठ 486, पद 10, डॉ. जयदेव सिंह डॉ. वासुदेव सिंह।
3. श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रन्थावली - पृष्ठ 170, परिशिष्ट पर 49।
4. ऊँचे कुल क्या जनमियां, जे करनी ऊँच न होइ।
   सुवरन कलस सुरा भरा, साधू निन्दै सोई॥
   (साखी/कुसंगति को अंग-7)
   सबद-134, संपादक डॉ. जयदेव सिंह डॉ. वायुदेव सिंह।

दिया जाता है। भारत का यह सामंती ढांचा मुस्लिम शासकों के आगमन से टूटने लगा था। दिल्ली, इलाहाबाद, बनारस और पटना बड़ी व्यापारिक मंडियां बन गई थीं। फिरोजाबाद, फतहबाद, फिरोजपुर और बदायूं जैसे नगर फिरोजशाह तुगलक बसा रहा था। तुर्क बादशाह व्यापार को बढ़ावा देने के लिए सिक्कों और बाटों में सुधार कर रहे थे। बादशाहों के भाई-भतीजे सौदागरी से धन कमा रहे थे। कृषि पर आधारित सामंती अर्थ-व्यवस्था को व्यापार पर आधारित पूंजीवादी अर्थव्यवस्था से चुनौती मिल रही थी जिसके परिणामस्वरूप सामंती समाज का ढांचा भी टूट रहा था, बदल रहा था।[1] जात-पात एवं कठोर कर्मकांड पर आधारित समाज नहीं चल सकता था क्योंकि पूंजीवादी उत्पादन जन्म पर आधारित रूढ़िबद्ध जातीय सीमाओं को स्वीकार नहीं करता। वर्ण-व्यवस्था शिथिल होने लगी थी। गोस्वामी जी ने वर्णाश्रम व्यवस्था को अस्वीकार करने वाले और अपने को बाह्याचरणों से श्रेष्ठ बताने वाले जिन तेली, कुम्हारों आदि वर्णों-धर्मों में उत्पन्न कलियुगी संतों को भला-बुरा कहा है वे तत्कालीन वर्ण-व्यवस्था के टूटने का अच्छा प्रमाण हैं। व्यापारिक संस्कृति ने बड़े शहरों को जन्म दिया, शहरों में विभिन्न वर्णों और वर्गों के लोग एक साथ काम करने के लिए विवश हुए, परिणाम स्वरूप कौमी भाषा का जन्म हुआ। इसी भाषा के प्रथम मुखर प्रयोक्ता कबीर थे।[2] कबीर की भाषा का मूल्यांकन इसी सन्दर्भ में होना चाहिए। कबीर की भाषा किसी एक जनपद की भाषा न होकर उत्तरी भारत के अधिकांश भागों में प्रचलित भाषाओं का सम्मिश्रण थी। हिन्दी खड़ी बोली का प्रारम्भिक रूप इसी में है।

कबीर का आविर्भाव समाजेतिहास के उस बिन्दु पर हुआ जहां सामन्ती समाज टूटने लगा था और पूंजीवादी समाज उभरने लगा था। इस संक्रान्ति वेला में मानव समाज मूल्य विघटन एवं मूल्य जड़ता की स्थिति में होता है। और उसे किसी ऐसे महापुरुष की तलाश रहती है जो मानवता को इस दुविधाजनक मनोस्थिति से उबार सके। कबीर मानो समय की आवश्यकता के अनुरूप भारतीय समाज के मार्गदर्शन के लिए अवतरित हो गये, भले ही अवतारवाद में कबीर की आस्था नहीं है। कबीर की कुंठा अत्यंत गहरी रही होगी क्योंकि काशी में एक ऐसे निर्धन, अज्ञात कुलशील वाले, अनपढ़ और निम्नजातीय जुलाहे का सम्मानपूर्वक जी सकना सम्भव नहीं था। विशेषकर जब वह गहन संवेदना, सूक्ष्म विवेचन विश्लेषण और अदम्य साहस से भरपूर हो। सामाजिक दमन एवं शोषण ने उनकी प्रतिभा को और अधिक सान चढ़ाया। कबीर की क्रान्तिकारी प्रतिभा में तत्त्व ग्रहण, तत्त्वधारण, उद्भावन और अभिव्यक्ति के चारों अंग प्रखर रूप से विद्यमान थे। "सार सार को गहि रहे, थोथा देई उड़ाय"[3] का गान करने वाले कबीर तत्त्वग्राही थे इसलिए पाखंड-नगरी काशी में रहकर भी पाखंडी नहीं बने बल्कि सम्पूर्ण सत्य के पक्षधर बने, तत्त्व या सार को समझकर जीवन में धारण करने के कारण ही कबीर ने न घरबार छोड़ा, न कातना और बुनना[4] और न ही ज्ञान-ध्यान और साधु-संगत[5]। वे तत्त्व को जीवन में धारण किये रहे, उनकी कथनी और करनी में रंचक मात्र भी भेद न था।[6] कबीर परम्परा को ढोने वाले नहीं थे। उनकी उद्भावना शक्ति या कल्पना शक्ति अद्भुत थी। काव्य-विन्यास के अभिन्न अंग के रूप में ही नहीं सामाजिक मान-मर्यादा, मूल्य एवं दार्शनिक आध्यात्मिक चिन्तन में भी उनकी उद्भावना

---

1. देखिए, कबीर आधुनिक संदर्भ में, डॉ. राजदेव सिंह, पृष्ठ 6-7।
2. देखिए, कबीर आधुनिक सन्दर्भ में, डॉ. राजदेव सिंह, पृष्ठ, 11।
3. वसुधा बन बहु भांति है, फूलै फलै अगाध।
   मिष्ट सुवास कबीर गहि, विषम गहै नहीं साध॥
   (साखी/ सारग्रही को अंग-4)
4. सबद/ 154/ संपादक- डॉ. जयदेव सिंह डॉ. वासुदेव सिंह।
5. संत न छांडै संतई, जो कोटिक मिलै असंत।
6. जैसी मन तैं नीसकै, तैसी चालै नाहि।
   मानुख नहीं ते स्वान गत, बांधे जमपुर जांहि॥
   (साखी/करनी बिना कथनी को अंग/3)
   करता दीसै कीरतन ऊंचा करि करि तुंड।
   जानै बूझै कछु नहीं, यों ही अंधा रुंड॥
   (साखी/करनी बिना कथनी को अंग/5)
   पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुवा, पंडित भया न कोय।
   एकै आखर पीव का, पढ़े सो पंडित होय॥
   (साखी/करनी बिना कथनी को अंग/4)

शक्ति का चमत्कार देखा जा सकता है।[1] कबीर ने अपने राम और ब्रह्म को हिन्दुओं और मुसलमानों के ईश्वर और अल्लाह से जैसे अलग चित्रित किया यह उनकी उद्भावना शक्ति का ही चमत्कार है। कबीर की उद्भावना मूक अन्तर्मुखी नहीं थी, मुखर थी इसलिए उन्होंने अपने साहित्य में जितने मुखर रूप से और प्रभावी ढंग से उसे अभिव्यक्ति दी है वह सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य में अद्वितीय है। अभिव्यक्ति का मापदंड सम्प्रेषण क्षमता है और संत कबीर का काव्य भाषा, भाव, विचार और कला के स्वर पर इतना अधिक सम्प्रेषण हुआ कि भिखारी उसके दोहों को गाकर भीख मांगता है, महात्मा उनके शब्दों को दोहराकर अपने कथनों की प्रामाणिकता सिद्ध करता है तथा विद्वान बुद्धिजीवी अध्ययन-अध्यापन और शोध का ही नहीं उच्च स्तरीय विचार-गोष्ठियों का विषय बनाकर कृतार्थ होता है। कबीर की वाणी की गूंज गरीब की झोपड़ी से लेकर विश्वविद्यालयों के परिसर में एक साथ सुनी जा सकती है। कबीर की प्रतिभा जिस कुंठा और त्रास की शिला पर घिसघिसकर पैनी हुई वह उनके युग के यथार्थ से उभरी थी। कबीर का काव्य मात्र आक्रोश और विद्वेष का काव्य नहीं है। उनका काव्य एक व्यापक विद्रोह एवं क्रांति-चेतना का काव्य है, सस्ते द्वेषजन्य आक्रोश का नहीं। आक्रोश की अभिव्यक्ति दिशाहीन, अन्धे और असमर्थ क्रोध के रूप में होती है जिसका मुख्य आधार घृणा, आक्रामकता और अक्षमता-जन्य हीनता रहती है। कबीर क्रांतिकारी हैं क्योंकि उनके विरोध करने में भी मूल्य-चेतना है, निर्माण-लालसा है, गहन रागात्मकता है, उदार परोपकारिता है, और है मानव मात्र के कल्याण की उत्कट इच्छा। कबीर जहां कहीं भी सामाजिक विकृतियों से उद्वेलित होते हैं, सामन्ती समाज के ठेकेदार सामन्तों, पण्डित-मौलवियों को दुतकारते-फटकारते हैं[2] तो वहां पर वैयक्तिक द्वेषभाव एवं हीनभाव रंचमात्र भी नहीं है। कबीर उनको भी सुधरने के लिए बार-बार कहते हैं क्योंकि कबीर, पूरी मानवता की कल्याण-कामना करते हैं। कबीर के काव्य में जो एक प्रकार की मस्ती, फकीराना अन्दाज और आक्रामकता है उसके मूल में भी उनकी समाज-कल्याण की भावना ही है। कबीर से पूर्व सिद्ध-साधकों ने भी जात-पात, छुआछूत, ऊंच-नीच, वेदशास्त्र, कर्मकाण्ड एवं बाह्याडम्बरों का विरोध किया था[3] परन्तु उनके विरोध में हीनता-जन्य आक्रोश अधिक था, उदार मानवतावादी के स्थान पर वैयक्तिक रूप से वंचित-शोषित होने की प्रतिक्रिया अधिक थी। कबीर के काव्य में दमित भाव रहे भी होंगे तो भी उन भावों का उदात्तीकरण हो गया है इसलिए उनके काव्य में विरोध का स्वर मस्ती भरा है, [4] ईर्ष्या-द्वेषजन्य कटुता से युक्त नहीं है। उनका व्यंग्य आक्रामक भी है और अनेक स्थानों पर मृदुल भी परन्तु उसमें सर्वत्र सुधार-परिष्कार का भाव निहित है।

कबीर का समाज-दर्शन अथवा आदर्श समाज विषयक उनकी मान्यताएं ठोस यथार्थ का आधार लेकर खड़ी हैं। अपने समय के सामन्ती समाज में जिस प्रकार का शोषण, दमन और उत्पीड़न उन्होंने देखा-सुना था, उनके मूल में उन्हें सामन्ती स्वार्थ एवं धार्मिक पाखण्डवाद दिखाई दिया जिसकी पुष्टि दार्शनिक सिद्धान्तों की भ्रामक व्यवस्था से हो जाती थी और जिसका व्यक्त रूप बाह्याचार एवं कर्मकाण्ड थे।[5] कबीर कबीर ने समाज व्यवस्था सत्यता, समता और सदाचार पर आश्रित करना चाहा जिसके परिणामस्वरूप कथनी और करनी के अन्तर को उन्होंने सामाजिक विकृतियों का मूलाधार माना और सत्याग्रह पर अवस्थित आदर्श मानव समाज की नींव रखी।

महात्मा कबीर को वेद-पुराण विरोधी मूर्तिभंजक और सम्पूर्ण सनातन धर्म का विरोधी सिद्ध करने के इच्छुक तथाकथित प्रगतिशील और दलित चेतना के पक्षधर विचारक उन्हें सम्पूर्ण सांस्कृतिक धरोहर से काटकर उस पर अपने एकाधिकार की मुहर लगाना

---

1. सबद, 299, सम्पादक जयदेव सिंह एवं डॉ. वासुदेव सिंह।
2. सबद, 299, सम्पादक जयदेव सिंह एवं डॉ. वासुदेव सिंह।
3. कबिर कलि खोटी भई, मुनिवर मिलै न कोइ।
   कामी लोभी मसखरा, तिनका आदर होइ॥
   (साखी/चांणक को अंग/8)
4. वैद मुवा रोगी मुवा, मुवा सकल संसार।
   एक कबीरा न मुवा, जाके राम अधार॥
   (साखी/जीवत मृतक को अंग/ 6)
5. सबद, 76 सम्पादक जयदेव सिंह एवं वासुदेव सिंह।
   सबद, 77 वही।

चाहते हैं परन्तु कबीर का विराट व्यक्तित्व उनके छिछले वादों, ओछे स्वार्थों के घटिया पैमानों में नहीं समा पाता इसीलिए वे झुंझलाकर या तो उनके अधिकांश काव्य को प्रक्षिप्त घोषित कर देते हैं या फिर उसकी मनमानी व्याख्या करने का प्रयास करते हैं। उन्हें समझना चाहिए कि कबीर प्राचीन सांस्कृतिक विरासत के अनुपयोगी, मृतपाय एवं अहितकारी तत्त्वों का विरोध करके भी अपनी परम्परा से जुड़े हैं। उनके सहज एवं स्वस्थ प्रवाह का मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं। कबीर को वेद-उपनिषद्, पुरान-कुरान, मन्दिर, मस्जिद, तीर्थ, व्रत, छापा-तिलक से विरोध नहीं, विरोध है उनके दुरुपयोग से। कबीर में कठमुल्लापन खोजने वाले भूल जाते हैं कि कबीर किसी शास्त्र का, किसी वाद का गुलाम नहीं वह तो बेहद्दी मैदान का फक्कड़ घुमक्कड़ है, हदों में बंधना उसके व्यक्तित्व के अनुरूप नहीं है।

सहज सामाजिक जीवन की पक्षधरता

महात्मा कबीर ने न तो घर छोड़कर संन्यासी बनने की वकालत की और न ही सिद्धों की तरह पांच मकारों की साधना करते हुए, सम्पूर्ण भोग भोगते परन्तु उनमें लिप्त न होते हुए सिद्धियां पाने का प्रयास किया।[1] नाथों का हठयोग और उसके सहारे अमर जीवन तथा जीवन्मुक्ति की धारणा में भी उनकी आस्था नहीं थी।[2] सिद्धों का सहज 'महासुख' है जो पंचकायगुणों के भोग से प्राप्त होता है। कबीर का सहज राम है जो चित्त की निर्मलता, इन्द्रियगत आसक्ति के त्याग और आपा के क्षय से पाया जाता है। उस परमप्रिय से परिचय की पहली शर्त है आपा का, मैं या अहंकार का, निश्शेष भाव से त्याग[3]। कबीर विषय-तृष्णा को माया का सबसे बड़ा शस्त्र मानते हैं। यही मनुष्य की सहजता के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है। विषय-तृष्णा मन में पैदा होती है इसलिए मन को मारने की बात कबीर कहते हैं।[4] कबीर ने अनुभव किया था मन की तृप्ति विषय-विकारों से कभी नहीं हो सकती। सहज की प्राप्ति के लिए इन्द्रिय संयम आवश्यक है[5] और इसी से सहज सामाजिक जीवन विकसित हुआ। कबीर की सहजता सीधेपन की सूचक है। कबीर ऐसे गुरु का सम्मान करते हैं जो घर की ओर मोड़ता है क्योंकि घर में, गृहस्थी में भी मुक्ति सम्भव है। वे स्वयं अपने पैतृक व्यवसाय से जुड़े रहे इसीलिए उनका चिन्तन किसी बैठे-ठाले का आकाश-विचरण अथवा परजीवी का बौद्धिक विलास नहीं है बल्कि एक आत्मनिर्भर, कर्मठ का व्यावहारिक सहज चिन्तन है। वेश, साधना पद्धति, विचार, रहन-सहन, आचार-व्यवहार की सिधाई ही कबीर की सहजता है। वे मानते हैं कि अगर सहजता आ गई, सारे जीवन में एक दत्तभाव रिस गया, मन निर्द्वन्द्व और निर्विषय हो गया तो फिर जो कुछ करो वही पूजा बन जायेगा, जहां जाओ वहीं परिक्रमा बन जायेगी। सहज सामाजिक जीवन में परिश्रम को महत्त्व देना, संयम और संतोष से रहना, सत्य-अहिंसा को अपनाना तथा हर प्रकार की विलासिता, संग्रह, क्रूरता एवं कदाचार का विरोध करना स्वाभाविक[6] है कबीर ने अपने आचरण द्वारा सहज जीवन का आदर्श प्रस्तुत किया।

सदाचार ही जीवन की कसौटी है

महात्मा कबीर व्यावहारिक संत थे। उन्होंने सामाजिक जीवन में विचार नहीं, आचार को महत्त्व

---

1. खा अन्ते पीअन्ते सुरअ रमन्त।
   (दोहाकोश, राहुल, दोहाकोश, गीत संख्या 48।)
2. राजदेव सिंह : कबीर आधुनिक संदर्भ में, पृ. 110-111।
3. आपा मेटे हरि मिले, हरि मेटे सब जाइ।
   अकथ कहानी प्रेम की, कहे न कोई पतियाई।
   (साखी/जीवन मृतक को अंग/ 10)
   रोडा ह्वै रहु बाट का, जति पाषंड अभिमान।
   ऐसा जो जन ह्वै रहे, ताहि मिले भगवान।
   (साखी, जीवन मृतक को अंग, 14)
4. ऐसी बानी बोलिए, मन का आपा खोइ।
   अपना तन सीतल करै, औरन को सुख होइ॥
   (साखी/उपदेश को अंग/9)
   मन गोरख मन गोविन्द, मन ही औघड़ होइ।
   जो मन राखे जतन करि, तौ आपै करता सोइ॥
   (साखी/मन को अंग/ 10)
   भगति दुवारा सांकरा, राई दसएं भाइ।
   मन तो मैगल होइ रहा, क्यूं करि सकै समाइ॥
   (साखी / मन को अंग/26)
   मन मनोरथ छोड़ि दे, तेरा किया न होइ।
   पानी में घी नीकसै, तौ रूखा खाइ न कोइ॥
   (साखी /मन को अंग/ 29)
5. संत न बांधे गांठरी, पेट समाता लेइ।
   आगै पीछै हरि खड़ा, जो मांगै सो देइ॥
   (साखी/बेसास को अंग/10)
6. अभिनव भारती-संयुक्तांक 1991-93, हिन्दी साहित्य एवं आलोचना की वार्षिक पत्रिका, पृ. 209।

दिया। सदाचार की दृष्टि से दो बातें अपेक्षित हैं—एक तो व्यक्ति का आचरण विश्वसनीय हो अर्थात् उसकी कथनी और करनी में पूरा सामंजस्य हो, दूसरे चरित्र में पारदर्शिता हो अर्थात् आदमी का चरित्र उसके कृतित्व में झलकता हो, उसके चिन्तन-मनन के अनुरूप हो। महात्मा कबीर ने अपने युग में साधारण गृहस्थों की बात क्या, धर्म के ठेकेदारों, समाज के रक्षकों और जापियों-तपियों तक के जीवन में विश्वसनीयता और पारदर्शिता का अभाव देखा।[1] यही कारण है कि उन्होंने व्यवहार को मनुष्य की कसौटी स्वीकार करते हुए आडम्बरयुक्त समाज पर[2] व्यंग्य किये। हिन्दू-मुसलमान, साधु-संत, योगी-यती, पशु-पक्षी, राजा-रंक सबकी परीक्षा का आधार उन्होंने उनके विचार को नहीं आचार को बताया है। शाक्त उन्हें इसी आचार-भ्रष्टता के कारण शूकर और श्वान से भी गया-बीता दिखाई देता है।[3] वैष्णव के प्रति उसकी सारी आस्था आचार के कारण है।[4] पांडे[5] और मुल्ला[6] को उसने उसी आचार की कसौटी पर खोटा पाया था। हंस और बगुले के प्रति उसकी सारी स्वीकृति-अस्वीकृति का यही एकमात्र कारण है।[7] कबीर के युग में सामंती ढांचा टूट रहा था जिससे जुड़ी सामन्ती संस्कृति में दरारें पड़ रही थीं और लोक संस्कृति उभरने लगी थी। इसी लोक संस्कृति के वाहक कबीर थे जो निराशावादी पद्धति और अर्थहीन गतानुगतिका को त्याग कर जीवन के स्वस्थ उपभोग का संदेश देती है, मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाती है और अन्य कृच्छ साधनाओं का निषेध करती है। सदाचार की शिक्षा देने में गुरु की उपादेयता कबीर ने स्पष्ट की है। सद्मार्ग को प्रशस्त करने में शास्त्र ज्ञान की अपेक्षा गुरु का आश्रय अधिक सुगम, श्रेयकर एवं सफलता देने वाला है। सदाचारी के आदर्श के रूप में सती[8] और शूर[9] शूर[9] को उन्होंने प्रस्तुत किया है। कबीर की सदाचार विषयक मान्यताएं विवेकाश्रित, व्यवहारसिद्ध एवं समाजोपयोगी हैं। रूढिवादिता उनमें नहीं है परन्तु उनकी मान्यताएं एक आध्यात्मिक मानव को ही आदर्श मानकर चली हैं, भोगवादी भौतिक मानव को उन्होंने स्वीकार नहीं किया है। जिन जीवन मूल्यों को कबीर सदाचार का आधार बनाते हैं वे परम्परागत वेद-शास्त्र विहित यम और नियम ही हैं जिनमें काम, क्रोध, लोभ, मोह और

---

1. सबद/ 165/डॉ. जयदेव सिंह डॉ. वासुदेव सिंह।
   रमैनी/ 61/डॉ. जयदेव सिंह डॉ. वासुदेव सिंह।
   रमैनी/ 35/डॉ. जयदेव सिंह डॉ. वासुदेव सिंह।
2. हम भी पाहन पूजते, होते रन के रोझ।
   सतगुरू की किरपा भई, डारा सिरतैं बोझ॥
   (साखी/भ्रम विधौसन को अंग/4)
   जप-तप दीसै थोथरा, तीरथ व्रत बेसास।
   सूवै सैबल सेविया, यों जग चला निरास॥
   (साखी/भ्रम विधौसन को अंग/8)
   केसन कहा बिगारिया, जे मूंडे सौ बार।
   मन को काहे न मूडिए, जामे विषय विकार॥
   (साखी/भेष को अंग/12)
3. भगति हजारी कापड़ा, तामैं मल न समाइ।
   सकल काली कामरी, भावैं तहां बिछाइ॥
   (साखी/साधू को अंग/ 13)
   साकत बाह्मन मति मिलै, वैसनौ मिलैं चंडाल।
   अंकमाल दै भेटिए, मानो मिलै गोपाल॥
   (साखी/ साधू महिमा को अंग/9)
4. मेरे संगी दोइ जन, एक वैष्णो एक राम।
   वह दाता मुकुति का, वो सुमिरावै नाम॥
   (साखी/ साधू को अंग/4)
5. पंडित कवन कुमति तुम लागे। सबद/164
   (जयदेव सिंह वासुदेव सिंह)
   पंडित देखहु मन में जानी।
   सबद/ 166/ डॉ. जयदेव सिंह, वासुदेव सिंह।
   सबद/169/ डॉ. जयदेव सिंह, वासुदेव सिंह।
6. कबीर काजी स्वादि वसि, ब्रह्म हतै लब दोइ।
   चढि मसीत एकै कहै, दरि क्यूं सांचा होइ॥
   (साखी/सांच को अंग/ 5)
7. मानसरोवर सुभग जल, हंसा केलि कराहिं।
   मुक्ताहल मुक्ता चुगै, अब उड़ि अन्त न जाहिं॥
   (साखी/परचा को अंग/39)
8. दोजख तो हम अंगिया यहुं डर नाहिं मुज्झ।
   भिस्त न मेरे चाहिए बाझ पियारे तुज्झ॥
   (साखी/ निहकर्मी पतिव्रता को अंग/7)
   सती जरन कौं नीकसी, चित धरी एक उमेख।
   तन मन सौंपा पीव को (तन) अंतर रही न रेख॥
   (साखी/ सूरातन को अंग/ 37)
9. सूरा जूझै गिरद सौं, इक दिसि सूर न होइ।
   कबीरा या बिन सूरिवां, भला न कहिसी कोइ॥
   (साखी/सूरातन को अंग/4)
   जिस मरनै ते जग डरै, सो मेरे मन आनंद।
   कब मरिहूँ कब देखिहूं, पूरन परमानंद॥
   (साखी/सूरातन को अंग/13)

अहंकार आदि विकारों का त्याग, सत्य, दया, क्षमा, अस्तेय, आत्म निग्रह, अचौर्य आदि का पालन निहित है। माया के रूप में जिन मानवीय विकारों के बचने की बात कही गई है वह भी परम्परानुमोदित है। जो लोग कबीर को नये दलित धर्म का संस्थापक सिद्ध करने में लगे हैं उन्हें अपने दलित धर्म की मूलभूत अवधारणा स्पष्ट कर लेनी चाहिए। और कबीर के समग्र व्यक्तित्व और कृतित्व पर चिंतन करना चाहिए। संत कबीर को साम्यवादी या दलित समाज के सांचे में बलपूर्वक अटाने के प्रयास में वे कबीर की महानता को नष्ट कर रहे हैं।

समता मूलक समाज की परिकल्पना

सामन्ती समाज में विषमता बद्धमूल है परन्तु कबीर जैसा विचारक जो कथनी और करनी[1] विचार और आचार की समानता का पक्षधर है यह सहन नहीं कर सकता कि चिन्तन के क्षेत्र में मानव मात्र की समता और एकता के पक्षधर अद्वैतवादी दार्शनिक व्यवहार के क्षेत्र में सामाजिक ऊंच-नीच और वर्ण-भेद के शिकार हो जायें। समाज का जातीय आधार पर जन्मजात बंटवारा सामंती समाज की आवश्यकता हो सकती है परन्तु कबीर जैसे क्रान्तिकारी विचारक के लिए सह्य नहीं। यदि सभी मनुष्य, सृष्टि के सभी प्राणी पंचतत्त्वों से बने हैं, एक ही मिट्टी के बर्तन, एक ही नूर से उपजे हैं, एक ही प्रभु की सन्तान हैं, एक ही परमात्मा स्वरूप के अंश हैं तो फिर यह छुआछूत, ऊंच-नीच का भेदभाव क्यों?[2] यह शुचिता-अशुचिता का शोर क्यों? महात्मा कबीर की खण्डन-मण्डनात्मक उक्तियों में मानव मात्र की समता का उद्घोष है। इसी समता और एकता से उपजा है उनका हिंसा-विरोध।[3] प्राणिमात्र के विरुद्ध हिंसा किसी भी धार्मिक, आध्यात्मिक सिद्धांत की आड़ में भी पाप ही कहलायेगी, पुण्य नहीं। मन, वचन और कर्म की हिंसा का विरोध सामाजिक समरसता एवं वैयक्तिक जीवन में पवित्रता का पोषक है। मांस और मदिरा आदि के सेवन का विरोध कबीर इसी आधार पर करते हैं।

साम्यवादी लेखक कबीर को जनवादी कवि के रूप में देखते हैं और उनके खण्डन-मण्डन में उन्हें वामपंथी तेवर नज़र आते हैं। कबीर का खण्डन-मण्डन उस निर्माण का हिस्सा है जिसे आध्यात्मिक मानव एवं रामराज्य की स्थापना का स्वप्न कहा जा सकता है। कबीर के क्रान्तिकारी तेवरों की प्रशंसा करके भी उनकी आध्यात्मिक जीवन-दृष्टि को भौतिकवादी वामपंथी कैसे पचा सकते हैं? जिस प्रकार स्वामी विवेकानन्द का अध्यात्म मजबूत राष्ट्रभक्ति की भित्ति पर खड़ा है, भगतसिंह का क्रान्तिकारी चिन्तन उग्र राष्ट्रवाद की मजबूत चट्टान पर स्थित है उसी प्रकार कबीर का समाज-चिन्तन अपने परिवेश और परम्परा के घात-प्रतिघात से उपजा है, कोई वायवीय, काल्पनिक चीज नहीं है। यदि ऐसा नहीं होता तो कबीर का काव्य कालजयी न होता। कबीर को समाज के निम्न वर्गों का प्यार मिला क्योंकि कबीर उस दलित-उपेक्षित वर्ग के थे और उनके विरुद्ध कहने को उनके पास कुछ था भी नहीं। शोषक वर्ग को प्रताड़ित करने के कारण कबीर लोकप्रिय हुए।

महात्मा कबीर के काव्य का अनुशीलन यह सिद्ध करता है कि उनके काव्य की मूलभूत चेतना समाज-संग्रह है वैयक्तिक मुक्ति का विधान नहीं। कबीर की भक्ति समाजोन्मुखी है, नर में नारायण की खोज करती है। कबीर, एक आदर्श आध्यात्मिक मानव निर्माण के माध्यम से समतामूलक, शोषण रहित, हिंसा रहित एवं समरस समाज का स्वप्न देखते हैं। समाज की विसंगतियों, कुरीतियों, विषमताओं और विकृतियों पर निर्मम प्रहार करते हुए भी वे समाज विरोधी नहीं हैं, मनुष्य की कमजोरियों, कुप्रवृत्तियों, कुवासनाओं और कुरूपताओं पर प्रहार करते हुए भी वे मानव मात्र के प्रति अगाध प्रेम, करुणा और सहानुभूति से भरपूर हैं। जिस आदर्श समाज का सपना कबीर ने देखा था उसमें वर्णाश्रम पर आधारित भेदभाव नहीं है, साम्प्रदायिक खेमेबन्दी नहीं है, शुद्ध मानवतावादी दृष्टि है। गांधी के सपनों के रामराज्य और स्वतंत्र भारत के संविधान में कल्पित वास्तविक धर्मनिरपेक्ष, लोककल्याणकारी, सामाजिक समता एवं समरसता पर आधारित समाज क्या उससे भिन्न है, यह विचारणीय है।

('कबीर अनुशीलन' से साभार)

---

1. सबद/ 76/ संपादक डॉ. जयदेव सिंह डॉ. वासुदेव सिंह।
2. कहु पंडत सूचा कवन ठांऊ। सबद/ 93, (सं. जयदेव सिंह डॉ. वासुदेव सिंह)।
3. साखी/ सांच को अंग/ 8।
   साखी/ सांच को अंग/ 14।

व्यवहार वीथी

बच्चों को सही सीख दें

सद्गुरु कबीर ने बीजक में कहा है—घर का सुत जो होय अयाना। ताके संग न जाहु सयाना ॥ अर्थात यदि पुत्र गलत रास्ते में जा रहा है या कोई गलत काम कर रहा है तो समझदार माता-पिता का कर्तव्य है कि वे पुत्र के गलत काम का समर्थन न करें, किन्तु उसे समझा-बुझाकर भरसक सही रास्ते में लाने का प्रयास करें। पुत्र के मोहवश या लोभ-लालचवश पुत्र के छोटे-बड़े किसी गलत काम का समर्थन करना या उस पर जानते-समझते हुए भी ध्यान न देना, उधर से आंखें मूंद लेना स्वयं अपने पुत्र को खाईं-कुआं में ढकेलना और उसकी हत्या करने के समान है।

ईर्ष्या और राज्य के लोभवश दुर्योधन बराबर पाण्डवों के साथ गलत व्यवहार, यहां तक उनकी हत्या का प्रयास करता रहा और इस बात को जानते-समझते हुए भी धृष्टराष्ट्र या तो उसका समर्थन करते रहे या उधर से लापरवाह बने रहे और इसका भयंकर दुष्परिणाम सामने आया कि उनके सामने ही उनके सारे पुत्र मारे गये और कौरववंश का विनाश हो गया। यदि धृष्टराष्ट्र प्रारंभ में ही दुर्योधन को डांट-डपट दिये होते या उसके सारे अधिकार को छीन लिये होते और दुर्योधन के किसी भी गलत कर्म-व्यवहार का समर्थन न करते तो उन्हें अपने बुढ़ापा में पुत्र-वियोग का दुख न सहना पड़ता।

कहा जाता है जब सुल्ताना डाकू को फांसी देने का समय आया तब उनकी अंतिम इच्छा पूछी गयी और तब उन्होंने अपनी मां से मिलने की बात कही। जब उनकी मां को उनसे मिलवाया गया तब वे अपनी मां से लिपटकर अपने दांतों से उनकी नाक काट लिये। यह देखकर लोगों ने कहा—अरे सुल्ताना! अब तो तुम्हारी फांसी होने वाली है और इस समय तुमने अपनी मां की नाक काटने का अपराध क्यों किया? तब सुल्ताना ने कहा—आज जो मुझे फांसी हो रही है उसका कारण यह मेरी मां ही है। जब मैंने बचपन में पहली बार दो अंडे चुराकर लाया और मां को दिया तब मां ने मुझे डांटने या मारने की बजाय मेरी मीठ थपथपायी और शाबासी दिया कि तुमने अच्छा काम किया। धीरे-धीरे मेरी चोरी की आदत बढ़ती गयी और जब-जब मैं कुछ चुरा कर लाता तब-तब मां मुझे शाबासी देती रही। परिणामस्वरूप मैं डाकू बन गया और आज मेरी फांसी हो रही है। जिस दिन मैं पहली बार अंडे चुराकर लाया था उस दिन शाबासी देने-समर्थन करने की बजाय मां मुझे दो चांटे लगाकर मुझे ठीक से डांट-डपट देती तो न मैं डाकू बनता और न मुझे फांसी की सजा होती।

कितने माता-पिता यह जानते हुए भी कि उनका पुत्र कुसंगी मित्रों की संगति में पड़कर नशा-दुर्व्यसन का सेवन करने लग गया है मोहवश पुत्र को कुछ कह नहीं पाते कि यदि पुत्र को डांटे-डपटेंगे या इस पर कड़ाई करेंगे तो यह घर छोड़कर कहीं भाग न जाये। इतना ही नहीं जब-जब पुत्र पैसा मांगता है वे पैसा भी देते रहते हैं या पुत्र कुछ काम करता है और उससे उसे जो पैसा मिलता है उसका उससे कुछ हिसाब भी नहीं मांगते। ऐसे माता-पिता जान-बूझकर पुत्र को मौत के मुंह में ढकेलते हैं। ऐसे माता-पिता एक प्रकार से स्वयं अपने पुत्र के हत्यारा बन जाते हैं। कोई हत्यारा तो एक ही बार में किसी की हत्या कर देता है, किन्तु जो माता-पिता जानते हुए भी पुत्र को नशा-दुर्व्यसन के लिए पैसा देते रहते हैं वे तो रोज-रोज धीरे-धीरे अपने पुत्र की हत्या कर रहे हैं। जब एक दिन नशा-दुर्व्यसन के कारण किसी गंभीर बीमारी या दुर्घटनावश जवानी में ही पुत्र की मृत्यु हो जाती है तब वही माता-पिता विलाप करते हैं कि इस बुढ़ापा में भगवान हमें किस पाप का दंड दे रहे हैं। वे यह नहीं समझ पाते कि जवानी में ही पुत्र को मौत के मुंह में ढकेलने का पाप तो उन्होंने स्वयं किया है।

एक सज्जन के घर जाना हुआ। पता चला कि कुछ माह पूर्व उनके इकलौते 28-30 वर्षीय जवान पुत्र की कैंसर के कारण मृत्यु हो गयी है। उनके पड़ोसी द्वारा पता चला कि उनका पुत्र थोड़ी उम्र में ही गुटखा, तम्बाकू, शराब आदि खाने-पीने लग गया था। ज्यादा कड़ाई करने एवं डांटने-फटकारने से पुत्र कहीं घर

छोड़कर भाग न जाये इस डर एवं मोहवश वे सज्जन पुत्र पर कड़ाई नहीं कर पाये। धीरे-धीरे ज्यादा शराब पीने के कारण 24-25 वर्ष की उम्र में ही पुत्र का लीवर खराब हो गया। काफी खर्च करके इलाज करवाया गया। डॉक्टरों ने उस युवक से कहा कि यदि जीवित रहना है तो शराब पीना सदा के लिए छोड़ दो। परंतु वह युवक शराब पीना छोड़ नहीं पाया और उसे कैंसर हो गया। अंत में 20-25 लाख रुपये इलाज में खर्च करने के बाद भी 28-30 वर्ष की भरी जवानी में उसकी मृत्यु हो गयी। यदि उसके माता-पिता प्रारंभ में ही उसे गलत संगति में जाने से रोक दिये होते और उसके दुर्व्यसन सेवन पर अंकुश लगाते तो संभवतः न तो उन्हें अपने जवान पुत्र की मृत्यु का वियोग सहना पड़ता और न उसके इलाज में 20-25 लाख रुपये खर्च करने पड़ते।

एक अच्छे भक्त परिवार का 20-21 वर्षीय इकलौता पुत्र गुटखा, तम्बाकू, शराब, अण्डा, मांस आदि खाने-पीने लगा है। माता-पिता समझाते हैं तो वह धमकी देता है कि ज्यादा कुछ कहोगे तो घर छोड़कर चला जाऊंगा। डरवश माता-पिता चुप रह जाते हैं। पिता कुछ कड़ाई करता है तो माता चुपके से छिपाकर पैसा दे देती है, जिससे पुत्र की आदत और बिगड़ती जा रही है। एक दूसरे भक्त परिवार का इकलौता पुत्र कुसंगति में पड़कर खूब गांजा पीने लग गया है, जिससे उसका स्वास्थ्य खराब रहने लगा है। माता-पिता ने घर पर ही उसके लिए एक छोटी-सी दुकान खोलवा दी है। दुकान में जो भी आमदनी होती है बेटा गांजा पीने में खर्च करता रहता है। मानो माता-पिता ने ही उसके गांजा पीते रहने के लिए रास्ता साफ कर दिया है। यह जानते-समझते हुए भी कि दुकान की आमदनी बेटा गांजा पीने में खर्च कर दे रहा है और इससे उसका स्वास्थ्य दिनोदिन बिगड़ता जा रहा है, माता-पिता इसलिए बेटे पर कड़ाई नहीं कर पा रहे हैं कि ज्यादा डांटने-फटकारने से बेटा कहीं घर छोड़कर न चला जाये। इस प्रकार वे स्वयं जान-बूझकर बेटे का जीवन बरबाद कर रहे हैं और उसकी जल्दी मृत्यु का कारण बन रहे हैं।

यह कहा जा सकता है कि हर प्रकार से समझाने-बुझाने पर भी जब बेटा न माने और दुर्व्यसन करना न छोड़े तब माता-पिता क्या करे! ऐसी स्थिति में माता-पिता को चाहिए कि बेटा को घर से एक पैसा भी देना बंद कर दे, उसे अपने से अलग कर दे और स्वयं उसे मेहनत-मजदूरी करने दे या फिर उसे नशा-मुक्ति केंद्र में दो-चार साल के लिए भेज दे। इन सबके बाद भी यदि बेटा नशा-दुर्व्यसन करना न छोड़े तो अपना वह जाने। माता-पिता उसके किसी गलत काम, खान-पान में न सहयोग करे, न समर्थन करे।

जिस घर-परिवार में स्वयं माता-पिता या अन्य बड़े-बुजुर्ग जिम्मेदार कहलाने वाले नशा-दुर्व्यसन का सेवन करते हैं, उनका ही खान-पान, स्वभाव, संस्कार, कर्म-व्यवहार गलत है वहां तो बच्चों का स्वभाव-संस्कार, खान-पान, कर्म-व्यवहार के साथ-साथ उनका पूरा जीवन बिगड़ना स्वाभाविक ही है। यदि ऐसे परिवार में किसी बच्चे का स्वभाव-संस्कार, कर्म-व्यवहार, खान-पान शुद्ध-सात्त्विक है और वह हर प्रकार के नशा-दुर्व्यसन से मुक्त है तो उसकी बार-बार बलिहारी है, वह धन्यवाद का पात्र है।

बच्चे को जन्म दे देना, पाल-पोषकर बड़ा कर देना, लिखा-पढ़ा कर किसी काम-धंधे में लगा देना और उसका शादी-विवाह कर देना मात्र ही माता-पिता का कर्तव्य नहीं है। बच्चे को अच्छे संस्कार और अच्छी सीख देना भी माता-पिता का एक मुख्य कर्तव्य है। और इसकी शुरुआत बचपन में ही होनी चाहिए। बड़ों के सामने कैसे बैठना चाहिए, कैसे उनका प्रणाम-नमस्कार, आदर-सम्मान करना चाहिए, उनसे विनम्रतापूर्वक कैसे बात-व्यवहार करना चाहिए, किसी चीज को कैसे आपस में मिल-बांटकर खाना चाहिए, आपस में कैसे एक दूसरे का सहयोग करना चाहिए आदि बातों की सीख यदि बच्चों को बचपन में दी जाये और ये बातें उनके स्वभाव-संस्कार में बिठा दी जायें तो बच्चे आगे चलकर और कुछ बन पायें या न बन पायें अच्छे इंसान जरूर बन जायेंगे जिसकी आज सबसे ज्यादा आवश्यकता है।

कितने घरों में माता-पिता या बड़े-बुजुर्ग छोटे बच्चों को बचपन में ही कैसे गलत सीख देकर उनका स्वभाव-संस्कार बिगाड़ देते हैं, इसे एक उदाहरण से समझा जा सकता है। जब कोई छोटा बच्चा खड़ा होकर

एक-एक कदम चलना शुरू करता है तब घर के बड़े लोग उसे प्रोत्साहन देने के लिए कहते हैं—बेटा! जाओ भैया को, दीदी को, बाबा को, दादी को मार आओ। यह सुनकर बच्चा जब एक-एक कदम धीरे-धीरे चलता हुआ जाता है और जब किसी को अपने कोमल और नन्हे हाथ से मारता है तब बड़े लोग हंसकर कहते हैं—वाह! हमारा बेटा कितना बहादुर है जो भैया को, दीदी को, बाबा या दादी को मार दिया। इस प्रकार बचपन में ही बड़े लोग अपने अनजाने में बच्चों को एक गलत सीख देकर उनका स्वभाव-संस्कार बिगाड़ देते हैं और वही बच्चे जब बड़े होकर माता-पिता, बड़े-बुजुर्गों का अनादर-तिरस्कार करते हैं या हाथ, लात, लाठी से मारते हैं तब कहते हैं बच्चे कलयुगी निकल गये। निश्चित ही इसमें बच्चों का दोष है, परन्तु बच्चों को बिगाड़ने में बड़े लोगों का भी हाथ होता है।

इसके विपरीत बच्चों को बचपन में ही यह सीख दी जाये कि बेटा! जाओ भैया को, दीदी को, बाबा को, दादी को, माता को, पिता को प्रणाम कर आओ या अमुक चीज दे आओ, और इसकी उनमें आदत डाल दी जाये तो बच्चे आगे चलकर बड़ों का आदर-सत्कार करते रहेंगे और उनमें दूसरों को कुछ देने और उनका सहयोग करने का भाव-संस्कार बने रहेंगे।

बच्चा किसके साथ उठता-बैठता है, किसकी संगत करता है, क्या खाता-पीता है, क्या सीख-समझ रहा है, कैसे बोलता-चालता है, इन सब बातों की निगरानी करते रहना भी बच्चे के माता-पिता और अभिभावकों की जिम्मेदारी है। यदि इन बातों पर ध्यान नहीं दिया गया तो बच्चों का स्वभाव-संस्कार बिगड़ना स्वाभविक है। बच्चों को ज्यादा आधुनिक, प्रगतिशील बनाने के मोहवश या बच्चों की जिद के कारण या आवश्यकतावश कितने माता-पिता, अभिभावक छोटी उम्र में ही बच्चों को महंगे मोबाइल खरीदकर तो दे देते हैं, फिर उसके बाद इस बात पर बिल्कुल ध्यान नहीं देते कि बच्चा मोबाइल में क्या देख रहा है और उससे क्या सीख रहा है। जब पानी सिर से ऊपर चला जाता है तब उनके पास पछताने और रोने के सिवा और कुछ नहीं बचता।

कितने घरों में माता-पिता या बड़े-बुजुर्ग बच्चों के सामने ही गाली-गलौज, लड़ाई-झगड़ा, मार-पीट करते रहते हैं, उनके सामने ही दूसरों की निंदा-बुराई करते रहते हैं, कुछ चीजों को छिपाकर रखने की कोशिश करते हैं, यह सब देख-सुन कर बच्चे बचपन में ही यह सब सीख जाते हैं और यह सब गलत आदतें उनके जीवन भर बनी रह जाती हैं और उनका जीवन बरबाद हो जाता है।

कितने घरों में माता-पिता अपने बच्चों के सामने अपने बुजुर्ग-बूढ़े, लाचार, बीमार माता-पिता एवं सास-ससुर का अनादर-तिरस्कार करते रहते हैं, थोड़ी-थोड़ी बातों के लिए उन्हें डांटते-डपटते रहते हैं, उनकी ठीक से सेवा नहीं करते, यहां तक बच्चों को उनके दादा-दादी से मिलने, उनके पास बैठने तथा उनसे बात तक नहीं करने देते। यह सब देख-सुनकर बच्चों के मन में अपने माता-पिता के लिए आदर-सत्कार का भाव नहीं रह जाता। आगे चलकर वही बच्चे जब अपने माता-पिता का अनादर-तिरस्कार करते हैं, तब वे कहते हैं कि बच्चे कलियुगी निकल गये हैं, हमारी सेवा-सत्कार नहीं करते। वे यह भूल जाते हैं कि इसकी सीख उन्होंने स्वयं दी है। यदि वे स्वयं अपने माता-पिता की सेवा-सत्कार किये होते तो उन्हें भी अपने बुढ़ापा में वही सब लौटकर मिलता।

सार यह है कि हर माता-पिता एवं अभिभावक को चाहिए कि वे स्वयं सभी प्रकार के नशा-दुर्व्यसन, गलत कर्म-व्यवहार, आचरण, खान-पान से सदैव स्वयं तो दूर रहें ही अपने बच्चों को भी कड़ाई के साथ इनसे दूर रखें। इसमें किसी भी प्रकार की छूट उन्हें न दें। साथ ही उनके किसी भी प्रकार के गलत कर्म, व्यवहार, आचरण, खान-पान तथा नशा-दुर्व्यसन का समर्थन न करे। बचपन से ही उन्हें विनम्रता, सरलता, सेवा, परोपकार, ईमानदारी, सद्गुण-सदाचार, बड़ों का आदर-सत्कार, उनकी सेवा तथा आज्ञापालन आदि की सीख-संस्कार दें तो बच्चों का जीवन तो सुंदर बनेगा ही, बच्चों के गलत कर्म-व्यवहार के कारण माता-पिता को सिर झुकाकर रहना और चलना होता है उससे भी वे बच जायेंगे, साथ-साथ उन्हें अपने बुढ़ापा में अपने बेटा-बहू से सादर-सम्मान, सेवा-सत्कार मिलते रहेंगे।

—धर्मेन्द्र दास

कबीर की सांस्कृतिक मनोभूमि

लेखक—डॉ. रामचन्द्र तिवारी

भारतीय इतिहास में पन्द्रहवीं शती (विक्रमीय) घोर राजनीतिक उथल-पुथल, सांस्कृतिक मंथन और मूल्यगत संक्रान्ति की शती है। इसी शती में कबीर का आविर्भाव हुआ था। कबीर का व्यक्तित्व मूलतः एक धर्मसाधक का व्यक्तित्व है। कबीर के पूर्व भारतीय धर्म साधना उपासना भेद के आधार पर बिखर कर अनेक मत-मतान्तरों में विभक्त हो चुकी थी। बौद्ध और जैन धर्म प्रभावहीन होने पर भी क्रमशः देश के पूर्वी (बंगाल और उड़ीसा) तथा पश्चिमी (राजस्थान और गुजरात) प्रदेशों में जीवित थे। नाथ-योगियों का प्रभाव यों तो पूरे देश में था, किन्तु उत्तर-भारत में वे अब भी विशेष सक्रिय थे। शैव और शाक्त मत सीमित दायरे में सामान्य जनता पर अपना प्रभाव बनाये हुए थे। वैष्णव भक्ति आन्दोलन इस समय सबसे अधिक प्रभावशाली था। दक्षिण से चलकर यह आन्दोलन महाराष्ट्र, गुजरात और राजस्थान से होता हुआ समस्त उत्तर भारत में फैल गया था। वैष्णव भक्ति आन्दोलन ने योगियों के प्रभाव को कम कर दिया था। इस समय तक दिल्ली में मुसलमानों का राज्य कायम हो चुका था और उस पर गुलाम वंश, खिलजी वंश, तुगलक वंश और सैयद वंश के शासक हुकूमत कर चुके थे। कबीर के समय में दिल्ली में लोदी वंश का शासन था और सिकन्दर लोदी जैसा कठोर शासक, अपना प्रभाव बढ़ाने के लिए प्रयत्नशील था। इस प्रकार कबीर के समय तक भारत इस्लाम की सांस्कृतिक परिधि के भीतर आ गया था। इस्लाम के अन्तर्गत धर्म-साधना की दो धाराएं थीं। एक धारा कट्टर मुल्ला-मौलवियों की थी। इनमें मजहबी जोश भरा हुआ था। दूसरी धारा उदार सूफी फकीरों की थी। सूफी फकीरों का सामान्य जनता में विशेष प्रभाव था। मुसलमान इस देश में विजेता के रूप में आये थे। इसलिए उनमें मजहबी जोश अधिक था। इस्लाम उनका राजधर्म था। इसलिए हिन्दू जनता के लिए वह एक चुनौती के रूप में उपस्थित था। भारतीय समाज में धार्मिक बंधन कठोर नहीं थे। हिन्दुत्व की परिधि के भीतर आस्था के अनेक केन्द्र थे। इसलिए भारतीय जनमानस इस्लाम का सामूहिक और संगठित विरोध करने में असमर्थ था। वस्तुतः धर्म का सम्बन्ध आस्था से है। कोई भी धर्म राजधर्म बनकर (सत्ता से जुड़कर) आतंकित कर सकता है, जनता का विश्वास नहीं प्राप्त कर सकता। जनता का विश्वास प्राप्त करने के लिए प्रत्येक धर्म को मनुष्यधर्मी होना पड़ता है। पन्द्रहवीं शती में इस देश में जो सांस्कृतिक मंथन हुआ, उसके फलस्वरूप उस महत्त्वपूर्ण भक्ति आन्दोलन को व्यापक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई जो दक्षिण से चलकर उत्तर भारत में आया था, जो अपनी प्रकृति में मनुष्यधर्मी था और जिसका नेतृत्व नामदेव, कबीर, नानक आदि समाज के निचले स्तर में आये हुए भक्तों ने किया था। इनमें सबसे प्रखर और आत्मविश्वास से भरा स्वर कबीर का था।

सामान्यतः समझा जाता है कि कबीर की भक्ति-साधना नाथपंथी योगियों और वैष्णव भक्तों के संश्लेष का परिणाम है। कुछ लोगों का मत है कि कबीर पर बौद्ध सिद्धों, नाथ योगियों, वारकरी सम्प्रदाय के भक्तों, सूफियों तथा एकेश्वरवादी इस्लाम के अनुयायियों इन सभी का थोड़ा-बहुत प्रभाव है। बौद्ध-सिद्धों और नाथ योगियों से कबीर का सम्बन्ध पांच समानताओं के आधार पर प्रमाणित किया जाता है—1. उच्चवर्गीय या ब्राह्मणों द्वारा अनुमोदित व्यवस्था का विरोध, 2. गुरु का महत्त्व, 3. पिण्ड-ब्रह्माण्ड की एकता, 4. 'सहज' या 'परमतत्त्व' की अवधारणा, 5. भाषा शैली एवं काव्य रूप। इसमें सन्देह नहीं कि उपर्युक्त पांचों स्तरों पर कबीर बौद्ध-सिद्धों और नाथ योगियों से प्रभावित हैं किन्तु यह ध्यान देने की बात है कि सभी स्तरों पर कबीर केवल इनके अंध अनुगामी नहीं हैं। कबीर की निजता परंपरा के अनुसरण में नहीं अतिक्रमण में है।

यही स्थिति वारकरी संतों, सूफियों और इस्लाम मतानुयायियों के प्रभाव को लेकर भी है। कबीर सबसे प्रभावित किन्तु सबसे अलग हैं। कबीर मध्ययुगीन सांस्कृतिक स्रोतों के संश्लेष मात्र नहीं, इन स्रोतों के सकारात्मक मनुष्यधर्मी तत्त्वों के आधार पर एक सच्चे मानवधर्म के संस्थापक संत हैं। 'कबीर' ने अपने विचार और आचार से एक ऐसी संस्कृति को जन्म दिया जो चिर-नूतन है। यह तो निर्विवाद है कि कबीर के पास ज्ञान की जो पूंजी है वह अनुभव से, सत्संग से और गुरु-कृपा से प्राप्त है। किसी भी धर्ममत की शास्त्रीय मीमांसा से कबीर को कुछ खास लेना-देना नहीं था। वे अधीत नहीं थे, बहुश्रुत थे। उनके पास सबसे बड़ी पूंजी आस्था की थी। अनेक धर्म मतों से अच्छी बातों को संग्रह कर लेने से अच्छाइयों का संदर्भकोश बन सकता है, 'आस्था' का निर्माण नहीं हो सकता। कबीर की सांस्कृतिक चेतना का विश्लेषण करते हुए हमें ध्यान रखना होगा कि किसी भी सांस्कृतिक प्रवाह के आलोक में उन्हें ठीक-ठीक नहीं समझा जा सकता। कबीर ने किसकी चुनौती स्वीकार नहीं किया है और किसे चुनौती नहीं दिया है। अवधू, पाण्डेय, पीर, औलिया, मुरशिद, नबी, मुल्ला, पंडित, जोगी, जंगम, वैष्णव, शाक्त, काजी, श्रावक आदि जितने भी धर्म-प्रतिनिधि उनके समय में थे सभी को उन्होंने चुनौती दी है। यह चुनौती उनके आचार-पक्ष में आई हुई विकृतियों को लेकर दी गई है। वे अवधू से चुनौती भरे स्वर में कहते हैं—

अवधू नादैं व्यंद गगन गाजै, सबद अनाहद बोलै।
अंतरिगति नहीं देखै नेड़ा, ढूँढ़त बन बन डोलै॥

हे अवधूत! नाद, बिन्दू, गगन में ध्वनित अनाहत नाद यह सब सूक्ष्म आन्तरिक क्रियायें हैं। इनको बिना जाने वन-वन में क्या ढूंढ़ते-फिरते हो? इसी प्रकार एक अन्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पद में वे कहते हैं—

अवधू ! छाड़हु मन विस्तारा।
सो पद गहौ जाहिते सदगति, पारब्रह्म ते न्यारा॥

पूरा पद लम्बा है। पद का सार यह है कि 'परब्रह्म' अपनी आदि अवस्था में अकेला होता है। उस अवस्था में न महादेव होते हैं, न मुहम्मद, न हरि, न हजरत, न आदम होते हैं न ब्रह्मा। न धूप, न छाया। न अस्सी हजार पैगम्बर होते हैं न अठासी हजार मुनि। न सूर्य होते हैं न चन्द्रमा, न तारागण, न मत्स्य और कच्छप अवतार होते हैं और न यह इन्द्रिय-गोचर संसार। न वेद, न कुरान, न स्मृति न संयम। उस अवस्था में जीव की छाया तक नहीं होती। न बांग होती है, न नमाज, न कलमा, न राम होते हैं न खुदा। 'परमपद' की उस मूल अवस्था में आदि, मध्य, अंत की अवधारणा भी नहीं होती। मन भी उस स्थिति में नहीं होता। अग्नि, पवन, जल आदि भूत भी उस स्थिति में नहीं होते। चौरासी लाख योनियां भी उस समय नहीं होतीं, उस समय प्रमाण रूप में प्रस्तुत की जाने वाली 'साखी', 'सबद' और 'बानी' भी नहीं होती। हे अवधू! अब विचारणीय यह है कि पूर्ण ब्रह्म कहां से प्रकट हुआ और यह सृष्टि कैसे उत्पन्न हुई? पूरे पद पर ध्यान दीजिए। जिन बातों को लेकर सारे धर्म और सम्प्रदाय एक दूसरे से टकराते हैं, भेद मानते हैं, और कभी-कभी एक दूसरे की जान लेने पर उतारू हो जाते हैं, उन बातों में कितना सार है? जिसे धर्म के प्रतिनिधियों ने सत्य मान लिया है, वह सब तो मन का विस्तार है। कबीर ने इसी मनोभूमि से धर्म के ठेकेदारों को चुनौती दी है। उस समय सबसे बड़ी समस्या हिन्दुओं और मुसलमानों की एकता को लेकर थी। दोनों जिन ऊपर भेदों को लेकर टकरा रहे थे उनके मिथ्यात्व को उजागर करते हुए कबीर कहते हैं—

हमारे राँम रहीम करीमा केसो, अलह राँम सति सोइ।
विसमिल मेटि बिसंभर एकै, और न दूजा कोई॥

वे सीधे प्रश्न करते हैं—

तुरक मसीति देहुरै हिन्दू, दुहँठा राम खुदाई।
जहाँ मसीति देहुरा नाहीं, तहँ काकी ठकुराई॥

कबीर के लिए अनुभूति-रहित सारा वाक्य-ज्ञान मिथ्या था। आचार-व्यवहार सम्बन्धी सारा कर्मकाण्ड व्यर्थ था। विडम्बना यह थी कि सभी धर्मोपदेशक अनुभूति को महत्त्व न देकर धर्मशास्त्रों में निरूपित

ऊपरी आचार-व्यवहार को महत्त्व देते थे। इसीलिए शुद्ध-अशुद्ध का टंटा खड़ा करने वाले पंडित से वे कहते हैं—

"पाँड़े बूझि पियहु तुम पानी।
जेहि मटिया के घर मँह बैठे, तामें सृष्टि समानी॥"

जिस तर्क से पंडित लोग नीची समझी जाने वाली जातियों के घरों में रखे हुए मिट्टी के पात्रों और उसके जल को अशुद्ध मानकर उसके पीने का निषेध करते थे उसी तर्क से कबीर यह प्रतिपादित करते हैं कि हे पांडे! यह मिट्टी, यह नदी का जल, यह गाय का दूध सब अशुद्ध है। इसी मिट्टी में मरने के बाद छप्पन करोड़ यादव, अठासी हजार मुनि और न जाने कितने पैगम्बर विलीन हो गये हैं। इस नदी में जिसके जल का प्रयोग आप निस्संकोच करते हैं—पशुओं और मनुष्यों की लाशें सड़-गल कर बहती रहती हैं। यह दूध, जिसे आप शुद्ध मानकर पीते हैं, पशुओं की हड्डी से झर कर और गूदे से गलकर आता है। मिट्टी में रखे हुए जल को तो आप अशुद्ध मानते हैं किन्तु नदी के जल और गाय के दूध को शुद्ध, यह कहां का न्याय है?

"नदिया नीर नरक बहि आवै, पसु मानुष सब सरिया।
हाड़ झरी झरि गूद गली गल, दूध कहाँ ते आया॥
सो लै पाँडे जेंवन बैठे, मटियहिं छूति लगाया॥"

इसी प्रकार काजी को सम्बोधित करते हुए वे कहते हैं—

"काजी तैं कवन कतेब बखाँनी।
पढ़त पढ़त केते दिन बीते, गति एकौ नहिं जानी॥"

कबीर मनुष्य को उसके सहज रूप में महत्त्व देते हैं। मनुष्य अपने प्रकृत रूप में न तुर्क है, न हिन्दू। न शैव, न वैष्णव, न बौद्ध न जैन। यह सारे भेद मनुष्य-कृत हैं। भेद पैदा करने वाले हैं। मनुष्य को बांट कर छोटा बनाने वाले हैं। वे काजी से कहते हैं कि तुम धर्म के नाम पर मनुष्य की 'सुन्नति' करते हो। सुन्नति करके तुर्क बनाते हो। यदि खुदा 'तुर्क' होने के लिए 'सुन्नति' करना जरूरी समझते तो स्वयं खत्ना करके पैदा करते?

"जौ रे खुदा तुरूक मोहि करता,तौ आपहि कटि किन जाई।"

और यदि सुन्नति कराकर तुर्क होना है तो औरतों का क्या होगा? सुन्नति को 'तुर्क' होने का लक्षण मान लेने पर नारी के रूप में तुम्हारा आधा समाज तो हिन्दू ही रह जाता है।

"सुनति कराई तुरुक जौ होना, तौ औरति कौं का कहिए।
अरध सरीरी नारि न छूटै, ताते हिन्दू रहिए॥

इसी स्तर पर ब्राह्मण को सम्बोधित करते हुए वे कहते हैं—यदि जनेऊ पहनने से मनुष्य ब्राह्मण हो जाता है तो स्त्रियों का क्या होगा? उन्हें तो जनेऊ पहनने का अधिकार ही नहीं है। वे तो जन्म से शूद्र ही रह गईं। फिर उनका परोसा भोजन क्यों खाते हो?

"घालि जनेऊ ब्राह्मन होता, मेहरिहिं का पहिराया।
वै जनम की सूद्रिन परोसै, तुम पाँडे क्यों खाया॥

अंत में वे निर्णय के स्वर में प्रश्न करते हैं—

हिन्दू तुरूक कहाँ ते आए, किन यह राह चलाई॥
दिल महिं खोजि देखि खोजा दे, भिस्ति कहाँ ते आई?
छाँड़ि कतेब राम भजु बउरे, जुलुम करत है भारी॥
कबीर पकरी टेक राम की, तुरुक रहे पचि हारी॥

हिन्दू और तुर्क के बनावटी भेद को निर्मूल करते हुए कबीर सत्य को पहचानने के लिए आग्रह करते हैं। वे साफ कहते हैं कि हिन्दू और तुर्क कहां से आ गये? ईश्वर ने तो 'मनुष्य' पैदा किया था। अपने दिल में ही प्रभु को प्राप्त कर सकते हो। उसके लिए 'बिहिस्त' जाने की आवश्यकता नहीं। 'सत्य' को प्राप्त करने के लिए धर्मग्रन्थ का आधार लेने की आवश्यकता नहीं है। कबीर ने तो दृढ़तापूर्वक 'राम' को (परम तत्त्व को) अपना आधार बना लिया है। धर्मग्रन्थों का आधार लेने वाले, 'सुन्नति' कराकर तुर्क बनने वाले और धर्म के नाम पर जुल्म करने वाले तो प्रयत्न ही करते रह गये। न उन्हें प्रपंच से मुक्ति मिल पायी न वे 'सत्य' को ही पहचान पाये। सारे भेद-प्रभेद से परे जो परम तत्त्व 'राम' है, कबीर ने उसी की टेक पकड़ी है। वही कबीर की 'आस्था' का केन्द्र है। वही कबीर का स्वामी, प्रिय, प्रभु, सखा, माता-पिता, रक्षक, भ्राता सब कुछ है। वह कबीर के हृदय में ही निवास करता है। उसी से मिलकर

कबीर ने सब कुछ प्राप्त कर लिया है। उसे जान लेने के बाद उन्हें कुछ भी जानना नहीं रह गया है। उन्होंने अपने स्वत्व को उसी में लीन कर दिया है। कबीर में अब न किसी प्रकार की वासना रह गई है, न आकांक्षा। अहंकार को विगलित करके, मन के सारे विकारों को त्याग कर, भेद-बुद्धि-जनित सारे प्रपंचों से ऊपर उठकर अपने को लोक और वेद दोनों के द्वारा विहित बाह्याचार के बन्धनों से अलग करके कबीर ने राम रूपी कसौटी पर खरा प्रमाणित किया है। यह वह कसौटी है जो भेद-बुद्धि का परिहार कर देती है, जो सुख-दुख की सांसारिक अनुभूतियों से ऊपर उठकर सच्चे साधक को सदैव आनन्दमग्न रखती है। यह वह कसौटी है जिसपर खरा उतरने के लिए अपने को मिटा देना पड़ता है। इसे स्पष्ट करने के लिए कबीर ने कुछ प्रतीकों को सामने रखा है। वे सोचते हैं कि पाखंड और अभिमान की चट्टान को तोड़ कर खण्ड-खण्ड करके बिछा देने से भगवान् मिल सकते हैं। फिर उन्हें लगता है कि तुच्छ रोड़ा होने पर भी पथिकों के कष्ट का कारण हुआ जा सकता है। रोड़े में भी अहंकार का कुछ अंश तो रह ही जाता है; तब वे सोचते हैं कि भगवान को प्राप्त करने के लिए राह की धूल बन जाना उचित होगा। फिर उनके ध्यान में आता है कि 'खेह' भी हवा के साथ उड़ कर राह में चलने वालों के अंग को मैला करती है, इसलिए खेह होना भी ठीक नहीं। इससे बेहतर होगा कि साधक अपने को 'जल' की तरह तरल बना ले। यह प्रतीक भी उन्हें पूरी तरह सन्तुष्ट नहीं कर पाता। जल भी तो कभी ठण्डा और कभी गर्म होता रहता है। द्वैत तो यहां भी है। द्वैत के रहते 'राम' कैसे मिल सकते हैं? तब वे इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि 'हरिजन' को हरिरूप ही होना चाहिए।

रोड़ा होइ रहु बाट का, तजि पाखंड अभिमान।
ऐसा जन होउ रहै, ताहि मिलैं भगवान॥
रोड़ा भया तो क्या भया, पंथी कौ दुख देइ।
हरिजन ऐसा चाहिए, ज्यौं धरनी की खेह॥
खेह भई तौ क्या भया, उड़ि-उड़ि लागै अंग।
हरिजन ऐसा चाहिए, ज्यों पानी सरबंग॥
पानी भया तौ क्या भया, ताता-सीरा होय।
हरिजन ऐसा चाहिए, जैसा हरि ही होय॥

हरि और हरिजन एक हैं। यों कहिए कि हरिजन हरि के साथ 'एकमेक' होकर ही अपनी साधना को सार्थक बनाता है। यह अद्वैतता शास्त्रज्ञान से या जप-तप, संयम-नियम, व्रत-उपवास, रोजा-नमाज, तीर्थ-हज से नहीं निश्छल 'प्रेम' से ही प्राप्त हो सकती है। इस प्रेम-मार्ग पर चलना सबके बस की बात नहीं है। यह खाला का घर नहीं है। इस पर चलने के लिए सती की मानसिक दृढ़ता और शूर का अविचल साहस चाहिए। कबीर अपार साहस लेकर इस मार्ग पर अग्रसर हुए थे। यह कहना ठीक नहीं कि "कबीरदास ऐसे मिलन-बिन्दु पर खड़े थे, जहां एक ओर हिन्दुत्व निकल जाता है और दूसरी ओर मुसलमानत्व; जहां एक ओर ज्ञान निकल जाता है, दूसरी ओर अशिक्षा; जहां पर एक ओर योग मार्ग निकल जाता है, दूसरी ओर भक्ति-मार्ग; जहां से एक तरफ निर्गुण भावना निकल जाती है, दूसरी ओर सगुण भावना।" सत्य तो यह है कि कबीर अद्वैत की उस मनोभूमि पर स्थित थे जहां आत्म और पर का, नाम और रूप का, जड़ और चेतन का, तथा हरि और हरिजन का भेद समाप्त हो जाता है।

कबीर की साधना और उनके विचारों को किन्हीं पूर्ववर्ती धर्म मतों या चिन्ताधाराओं के आलोक में देखना उनकी स्वानुभूति की निजता या मौलिकता के साथ अन्याय करना होगा। कबीर मूलतः साधक हैं। रहस्यदर्शी परमतत्त्व को उन्होंने अनुभूति के बल पर पहचाना था। उनकी वाणी में यही अनुभूति अखण्ड आस्था के साथ व्यक्त हुई है। बौद्धिक धरातल पर कोई भी विचारक उसकी व्याख्या अपने ढंग से कर सकता है। इसीलिए कभी उन्हें 'एकेश्वरवादी' कहा गया कभी 'अद्वैतवादी'। कभी उन्हें द्वैताद्वैत विलक्षण 'समतत्त्ववादी' कहा गया कभी 'ईश्वराद्वयवादी'। कबीर की वाणियों में संगति बैठाना, उन्हें वैचारिक व्यवस्था देना यह पंडितों का काम है। इस सम्बन्ध में डॉ. रामपूर्ति त्रिपाठी का यह कथन सर्वथा उचित है कि "अभिव्यक्ति तो समाज-

दत्त भाषा के ही माध्यम से होगी और अनुभव के लिए साधन परंपरा और निर्देश की परम्परा से ही मिला होगा—यही कारण है कि अनुभूति के नितांत मौलिक होने पर भी साधना और अभिव्यक्ति की दृष्टि से वे किसी न किसी परम्परा से भी सबंद्ध हैं।" (तंत्र और संत, पृ. 75) इसी लाचारी के कारण 'कबीर' को भी अनेक परंपरागत परिभाषित शब्दों का प्रयोग करना पड़ा है। लेकिन इन शब्दों का प्रयोग करते हुए भी कबीर ने उनमें नया अर्थ भरा है। कबीर के यहां 'सहज', 'शून्य', 'नाद', 'बिन्दु', 'सुरति', 'निरति', 'निरंजन' आदि अनेक परंपरागत (तांत्रिकों, बौद्ध-सिद्धों और नाथ योगियों में प्रचलित) शब्द प्रयुक्त हैं। इन सभी को उन्होंने अपनी आस्था के अनुसार नया अर्थ दिया है। सहज, शून्य, निरंजन ये सभी शब्द कबीर के लिए 'राम' से अभिन्न हैं। कबीर की 'निरति' भी पूर्णतः अभावात्मक नहीं है। उनके यहां 'सुरति' के 'निरति' में समाने से सिंह द्वार खुल जाता है और 'शिवत्व' की अनुभूति होती है। कबीर का 'परमतत्त्व' राम से अभिन्न है। इसीलिए परमतत्त्व वाची सभी परंपरागत शब्द उनके यहां 'राम' के द्योतक हैं।

'संस्कृति' वह मानवीय मूल्यवत्ता है जो चेतना का संस्कार और परिष्कार करके मनुष्य को सभी प्रकार के भेदों से ऊपर उठा देती है। संस्कृत-मानस पारदर्शी होता है। कबीर की मनोभूमि पूर्णतः संस्कृत है। इसीलिए वह पारदर्शी भी है। उनका युग संक्रांति का युग है। धर्म और साधना के क्षेत्र में ही नहीं जीवन के सभी क्षेत्रों में भेद-भाव की पराकाष्ठा उस युग की सामान्य विशेषता है। शासक-शासित, धनी-गरीब, ब्राह्मण-शूद्र, हिन्दू-तुर्क का भेद तो है ही शैव, शाक्त, वैष्णव, योगी, सिद्ध, श्रावक आदि अनेक धर्ममत भी अपनी रूढ़ियों और विकृतियों के साथ उनके युग में विद्यमान हैं। कबीर के पारदर्शी मानस में ये सारे भेद, यह सारी विकृतियां साफ-साफ उभर आई हैं। वे ऐसे साधक नहीं हैं जो आत्मलीन होकर एकान्त में पड़े रहें। वे जगत-गति से आन्दोलित होते हैं और जहां कहीं उन्हें आडम्बर, संकीर्णता, भेद-भाव और थोथा अहंकार दिखाई पड़ता है, वहां प्रहार करते हैं। इसीलिए सामाजिक धरातल पर उनके विचार क्रान्तिकारी प्रतीत होते हैं। समाज सुधार चाहे उनका लक्ष्य न हो, लेकिन सामाजिक कुरीतियों पर उनके द्वारा किया गया प्रहार प्रत्यन्त सार्थक और प्रासंगिक है। वे अच्छी तरह जानते हैं कि 'तत्त्व' एक और अद्वय है। इसलिए सभी प्रकार के भेद झूठे और थोथे हैं। कबीर ने बोध धरातल पर, अनुभव के स्तर पर, सत्य का साक्षात्कार किया है, इसलिए उनका सत्य उनसे अलग नहीं है। वे सत्य को जीते हैं। अद्वैतता को चरितार्थ करते हैं। उनकी वाणी को उनकी क्रिया प्रमाणित करती है। इसीलिए उनके शब्द छूछे नहीं हैं। संस्कृति, धर्म साधना, यह सब उनके लिए पोथियों में लिखे गये कोरे शब्द नहीं हैं, इन सभी को उनके आचरण से अर्थ प्राप्त होता है। इसी बिन्दु पर कबीर अपने युग के अन्य साधकों से अलग हो जाते हैं। कबीर के मानस का साक्षात्कार करने के लिए हमें स्वयं अपनी चेतना को परिष्कृत और संस्कृत करना होगा। अभेद की उस भूमि तक पहुंचना होगा जहां खड़े होकर कबीर ने अपने युग के पोंगापंथी धर्म-नेताओं को चुनौती दिया था। केवल यह कहने से काम नहीं चलेगा, कि कबीर संतमत के प्रवर्तक हैं और 'संतमत का चरम तत्त्व 'द्वयात्मक अद्वय' है—समरस है—आगम सम्मत अद्वैत है। यह तो कबीर को उसी पुस्तक-ज्ञान में बांधना हुआ जिसका उन्होंने विरोध किया था। 'कबीर' को समझने के लिए 'प्रीति' की 'पीर' उत्पन्न करनी होगी। आत्म का प्रसार करना होगा। भेद-बुद्धि को मिटाना होगा। 'भेद' की पूंछ पकड़ कर संसार से पार नहीं उतरा जा सकता। कबीर को तो इसी बात की कसक थी कि लोग भेद की पूंछ पकड़कर संसार-सागर से पार होना चाहते थे—*कबीर इस संसार को, समझाऊँ कै बार। पूंछ ज पकड़ै भेद की, उतर्‌या चाहै पार*॥

काश, कबीर ने जो समझाया था हम उसे समझ सके होते।

('कबीर अनुशीलन' से साभार)

लघु-कथा

दिल का टुकड़ा

लेखक—दिनेन्द्र दास

पति-पत्नी में काफी देर तक तनातनी होती रही। अंततः प्रिया ने खीझकर हिमांशु से कहा—"अब मैं तुम्हारे मां-बाप को भोजन बनाकर नहीं दे सकती। इतने दिनों तक खिला लिया, बहुत हो गया और कब तक खिलाती रहूंगी। बुढ़िया तो अपने तथा अपने पति के लिए भोजन बना सकती है।"

"तुम कैसी बातें करती हो। मैं अपने मां-बाप का एकलौता बेटा हूं और तुम उनकी बहू। हम दोनों दो बच्चे एवं बूढ़े मां-बाप को भोजन नहीं देंगे तो लोग क्या कहेंगे?

"मुझे दुनिया के लोगों की कोई परवाह नहीं है, चाहे जैसा भी हो। अब मैं उन लोगों को भोजन बनाकर नहीं दूंगी।"

हिमांशु ने अपने पिता से कहा—"पिताजी! मैं तो चाहता हूं कि हम सब साथ-साथ रहें पर आपकी बहू का मन आप लोगों के साथ रहने का नहीं है। इसलिए मुझे बंटवारा दे दीजिए।"

हिमांशु की बातों को सुनकर पिता घनश्याम हतप्रभ हो गये। काटो तो खून नहीं। वे फिर कुछ समय बाद विचारकर बोले—"बेटा, मैं बंटवारा क्या दूं! तुम्हीं बंटवारा ले लो। शर्त यह है कि जो अपने से बनाये हो और जिसमें मेरा हाथ नहीं लगा हो वह संपत्ति तुम ले लो।"

हिमांशु के अंतर्मन में हुआ मेरे घर की सारी संपत्ति में पिताजी का नाम है। मकान, दुकान एवं खेत आदि संपत्ति भी माता-पिता अपने कठिन परिश्रम से इकठ्ठा किये हैं। यदि माता-पिता नहीं होते तो मैं कहां से पैदा होता। मां-बाप की सेवा कर कई जन्म लेकर भी उनके ऋण से मैं उऋण नहीं हो सकता।

हिमांशु ने अपनी पत्नी प्रिया से कहा—"पिताजी मुझे मेरा हिस्सा देने के लिए तैयार हैं और मैं भी तुम्हें तथा बच्चों को अपना-अपना हिस्सा देने को तैयार हूं। पहले पिताजी की बात अच्छी तरह से कान खोल कर सुन लो। उन्होंने मुझसे कहा है जो तुमने कमाया है वह संपत्ति तुम ले लो, यह बात मुझे बहुत अच्छी लगी। प्रिया, अब मेरी बात भी सुन लो, जो संपत्ति तुमने कमाई है उसे तुम ले लो। इतना ही नहीं जो संपत्ति बच्चे कमाये हैं उसे बच्चे ले लें। आज सबका एक साथ बंटवारा हो जाये।"

उन्होंने कुम्हार के घर से चूल्हे मंगवाये और एक चूल्हा अपने माता-पिता को, एक चूल्हा अपनी पत्नी प्रिया को और एक-एक चूल्हा अपने बच्चों को दे दिया। हिमांशु ने सभी लोगों से कहा—"अब सब अपने-अपने चूल्हे में अपने-अपने ढंग से बनाओ-खाओ और प्रसन्न रहो।'

प्रिया ने हिमांशु से कहा—"आप पागल हो गये हैं क्या! इतने चूल्हे घर में जलाकर क्या फैक्टरी की चिमनियां जलायेंगे। मेरे सास-ससुर और हम लोग अलग रह सकते हैं पर छोटे-छोटे बच्चों को भी अलग रहने की बातें करते हैं। ऐसा कहीं हुआ है कि कोई बाप अपने छोटे-छोटे बच्चों को भी बंटवारा दिया हो। आप कैसे बाप हो जो अपने बच्चों पर भी रहम नहीं करते। आप अपने दिल के टुकड़े को भी बाहर रहने की बातें करते हैं।"

"तुम्हें अपने बच्चे ही बच्चे दिखाई दे रहे हैं और मेरे माता-पिता नहीं दिखाई दे रहे हैं। मैं भी तो अपने माता-पिता के दिल का टुकड़ा हूं। मेरे माता-पिता मुझे अलग रहते देखकर अपने को कैसे बरदाश्त कर पायेंगे। फिर माता-पिता एक दिन बच्चे के समान हो जाते हैं फिर क्या कमाएंगे और क्या खाएंगे।"

पति की बात सुनकर प्रिया गंभीर हो गई और मन में सोचने लगी ओह! मैं क्या कर रही हूं? अपने स्वार्थ के लिए बूढ़े सास-ससुर की उपेक्षा कर रही हूं। कल के दिन हमारे बच्चे हमें छोड़ देंगे तो हमें कैसा लगेगा?

अंततः प्रिया हाथ जोड़कर हिमांशु से क्षमायाचना करती हुई बोली—"मुझसे बहुत बड़ी गलती हो गई। अब जैसे मैं प्राणप्रण से अपने बच्चों की सेवा और संरक्षण करती हूं वैसे ही मरते दम तक अपने सास-ससुर की सेवा-सत्कार जीवन भर करती रहूंगी।" ❑

हमारे आन्तरिक शत्रु

जब अपवित्र विचार घेरते हैं!

(काम—कारण और निवारण)

लेखक—श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट

पतन की सीढ़ी का पहला डंडा है—अपवित्र विचार। गीता के ये श्लोक मैंने एक-दो बार नहीं, अनेकों बार पढ़े होंगे—

ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥

(2/62-63)

विषयों का ध्यान किया नहीं कि पतन का गड़हा तैयार! अपवित्र विचारों का चिन्तन किया नहीं कि गये!

× × ×

जानता हूं और अच्छी तरह जानता हूं कि पतन का सूत्रपात अपवित्र विचारों से होता है।

फिर भी, मैं दिन-रात, आठ पहर, चौंसठ घड़ी अपवित्र विचारों से अपने को घेरे रखता हूं। और यही कारण है कि मैं कदम-कदम पर गिरता हूं, पग-पग पर ठोकरें खाता हूं।

× × ×

लोग भले ही मुझे सदाचारी मानते रहें, आदर्श कहकर पुकारते रहें और इन उपाधियों से विभूषित होने पर मैं भले ही अहंकार से फूलकर कुप्पा होता रहूं, पर असलियत क्या है, इसका पता तो अन्तर्यामी को छोड़कर और किसे है?

वस्तुस्थिति का पता और किसी को रहता तो वह निश्चय ही मेरी ओर उंगली उठाकर कहता—

उसकी बातों से समझ रखा है तुमने उसे खिज्र,
उसके पांवों को तो देखो कि किधर जाते हैं!

× × ×

हृदय की गहन गुफा में उतरकर जब मैं अपने पिछले जीवन पर दृष्टिपात करता हूं, तो एक सर्द आह बरबस निकल जाती है—

'मो सम कौन कुटिल खल कामी!'

कितनी बार गिरा हूं, कहां-कहां गिरा हूं, कब-कब गिरा हूं, इसका भी कोई पार है!

तुलसी बाबा के शब्दों में—

जौं अपने अवगुन सब कहऊँ।
बाढ़इ कथा पार नहिं लहऊँ।

× × ×

पत्नी कभी-कभी भावविभोर होकर गाती है—

भगवन तुम्हारी याद में जाऊँ कहाँ कहाँ?
चौदह भुवन में विराजते पाऊँ कहाँ कहाँ?
दुनिया के पापियों में मुकुट मुझको समझ लो,
नस-नस में भरा पाप, छिपाऊँ कहाँ-कहाँ?...

उस समय मुझे अपनी दशा पर बड़ा तरस आता है।

× × ×

सचमुच यहां तो नस-नस में पाप ठुंसा पड़ा है, मलिन वासनाएं भरी पड़ी हैं, अपवित्र विचार डेरा जमाये बैठे हैं और मैं रात-दिन इन्हीं के चक्कर में फंसा डूबता-उतराता रहता हूं।

× × ×

खूब जानता हूं कि काम के हाथ का खिलौना बनना बहुत बुरा है, विकारग्रस्त होना गन्दी बात है। कभी-कभी उससे विरत होने की भी चेष्टा करता हूं, भूले-भटके कभी सफल भी हो जाता हूं, परंतु ज्यादातर बाजी उसी के हाथ रहती है!

मैं सहज ही गिर जाता हूं।

× × ×

जब कभी अपने पतन पर विचार करने बैठता हूं तो चकित हो उठता हूं कि किस तरह पलक मारते कहां से-कहां जा पहुंचा!

कितनी छोटी-सी बात ने कितने गहरे ले जाकर डुबा दिया!

तभी यदि अपवित्र विचार को रोक लिये होता, उस पर नियन्त्रण कर लेता, उसे पनपने का मौका नहीं देता, उसे इन्द्रियां न सौंपता, तो गिरने की नौबत ही क्यों आती?

और यही तो नहीं हो पाता!

ऐन मौके पर ही चूक जाता हूं।

फिर तो गिरना अवश्यम्भावी है।

जवानी का रास्ता तो चिकना होता ही है, प्रौढ़ और बूढ़े भी वासना से पीड़ित होते देखे जाते हैं।

और आज के दूषित वातावरण में, जब यत्र-तत्र-सर्वत्र अपवित्र विचारों की अजस्र धारा प्रवाहित हो रही है, कौन उससे अछूता रह पाता है?

× × ×

आप यदि अपवित्र विचारोंसे प्रभावित नहीं होते, मलिन वासनाओं से क्षुब्ध नहीं होते, आकर्षण के चक्कर में नहीं फंसते, मनोज-बाणों से व्यथित नहीं होते, तो आप प्रणम्य हैं, वन्दनीय हैं। आपके पावन चरणों में मेरे कोटि-कोटि प्रणाम!

× × ×

जहां तक मेरा सवाल है, अपना तो अंग-अंग विषय-वासना से, अपवित्र विचारों से सराबोर है।

यहां तो इन्द्रियां, मन और बुद्धि सभी विषयों की चेरी हैं।

पल-पल, क्षण-क्षण विकारों की ही आराधना करता रहता हूं।

हर घड़ी रूप, रस, गन्ध, शब्द और स्पर्श के लिए ही आकुल रहता हूं!

× × ×

एक एक इन्द्रिय विषय लोलुप मीन मतंग।
मरत तुरंत अनाथ सम, भृंग कुरंग पतंग॥

एक-एक इन्द्रिय ही जब बुरी तरह मारती और जलाती है, तब यहां तो सभी इन्द्रियां एक साथ विषयों के लिए व्याकुल रहा करती हैं!

उसका नतीजा सामने है!

× × ×

आंखों का यह हाल है—

जिधर डाली नजर देखी उधर ही एक नयी सूरत।
दिले नादाँ मचलता है कि मैं तो बस यही लूँगा।

नैना वैरी, रूप की प्यास बुझाने के लिए हरदम छटपटाया करते हैं।

× × ×

'आंखों में अबला, कानों में तबला' बसा हुआ है!

विषय-रस से ओत-प्रोत कहानियां सुनने के लिए मेरे कान आठ पहर चौंसठ घड़ी बेचैन रहते हैं। रसीले गाने की कोई भी कड़ी कान में पड़ भर जाये कि ऐसा लगता है कि इससे आनन्ददायक वस्तु संसार में और होगी ही क्या!

× × ×

निगोड़ी जीभ की तो बात ही क्या बताऊं? पूड़ी और हलुआ, चमचम और रसगुल्ला, मिठाई और रबड़ी, मिर्च और मसाला, अचार और चटनी चाटने के लिए वह रात-दिन जमीन-आसमान के कुलावे एक में मिलाया करती है।

× × ×

गुलाब और केवड़ा, इत्र और हिना की गमक मेरी नासिका को परम प्रिय है। चमेली और रजनीगन्धा, स्नो और क्रीम की खुशबू से दिल बाग-बाग हो उठता है!

× × ×

शैय्या मेरी कोमल होनी चाहिए। रजाई हो, गद्दा हो, तकिया हो। फूलों से सजी हुई रहे तो और उत्तम।

शरीर का रोम-रोम, त्वचा का कण-कण कोमल और स्निग्ध प्राणी-पदार्थों के स्पर्श के लिए रात-दिन आकुल रहता है।

× × ×

मतलब, मेरा अंग-अंग कामोत्तेजक प्राणी-पदार्थों के संग के लिए हरदम बेचैन रहता है। भोग-विलास की वस्तुएं मुझे परम प्रिय हैं। वासना को उद्दीप्त करने वाले प्राणी-पदार्थ मुझे सबसे अच्छे लगते हैं। यही जी करता है कि आठ पहर चौंसठ घड़ी विषय-भोग की ही सरिता में अवगाहन किया करूं।

मेरा खाना-पीना, सोना-जागना, उठना-बैठना, हंसना-गाना, खेलना-कूदना—सब कुछ विलास-वासना से ओत-प्रोत रहता है। ऐसा लगता है, मानो विलास ही मेरे जीवन का एकमात्र लक्ष्य है। रात-दिन मैं उसी में डूबता-उतराता रहता हूं!

× × ×

बचपन से सुनता आ रहा हूं कि ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए, इन्द्रियों को काबू में रखना चाहिए, कामवासना का शिकार नहीं बनना चाहिए ।

अन्तरात्मा से भी ऐसा ही आदेश मिलता रहता है।

वेद और शास्त्र में, पुराण और कुरान में, बाइबिल और धम्मपद में ऐसा ही पढ़ा भी है।

मौके-बेमौके स्वयं भी ऐसा प्रवचन किया है। परंतु, इन बातों को जीवन में कहां उतार पाया हूं?

× × ×

और जब तक ज्ञान आचरण में नहीं आता, तब तक उसका मूल्य ही क्या ?

उपदेश जब तक जीवन में नहीं उतरता, शरीर के रोम-रोम में नहीं भिदता, तब तक उसकी सार्थकता क्या?

पढ़ना गुनना चातुरी, तीनों बात सहल्ल।
काम दहन, मन बस करन, गगन चढ़न मुशकिल्ल॥

× × ×

बात यह है कि यह चढ़ाई बहुत कठिन है। इस राह में बड़ी जल्दी दम फूलने लगता है।

इसके विपरीत नीचे का रास्ता बड़ा चिकना है। उस पर पैर फिसलते देर नहीं लगती। क्षणिक सुख का आकर्षण मेरे-जैसे सहज पतनशील व्यक्तियों को पलभर में गिरा देता है।

बड़ा कंटीला रास्ता है यह। पग-पग पर ठोकर लगने की नौबत है, पता नहीं इसके राही किस क्षण लुट जायें!

परंतु इसका अर्थ यह तो नहीं ही है कि पहले से ही हताश होकर इस मार्ग पर पैर ही न रखे जायें। अथवा कभी गिर जाने पर फिर से उठने की कोशिश ही न की जाये।

बापू ने एक बार इसका बड़ा ही सटीक उत्तर दिया था।

× × ×

बात यह हुई कि ब्रह्मचर्य के अपने अनुभवों की चर्चा करते हुए उन्होंने लिखा—

'ब्रह्मचर्य की पूर्ण अवस्था को मैं अभी नहीं पहुंचा। यह अवश्य है कि वहां तक पहुंचने का मेरा प्रयत्न निरन्तर जारी है। तन पर तो मैंने अपना काबू कर भी लिया है, जाग्रत् अवस्था में मैं सावधान रह सकता हूं। वचन के संयम का पालन करना भी ठीक-ठीक सीखा है, पर विचार पर अभी मुझे बहुत कुछ काबू करना बाकी है। जिस समय जिस बात का विचार करना हो, उस समय केवल एक उसी के विचार आने के बदले दूसरे विचार भी आ जाया करते हैं। इसमें विचारों में परस्पर द्वन्द्व हुआ करता है। फिर भी जाग्रदवस्था में मैं विचारों को परस्पर टक्कर लेने से रोक सकता हूं। मेरी यह स्थिति कही जा सकती है कि गन्दे विचार तो आ ही नहीं सकते, मगर निद्रावस्था में विचारों पर मेरा काबू कम रहता है। नींद में अनेक प्रकार के विचार आते हैं, अकल्पित सपने भी आते ही रहते हैं और कभी-कभी इसी देह की की हुई बातों की ही वासना भी जाग्रत हो उठती है। वे विचार जब गन्दे होते हैं तब स्वप्नदोष भी होता है। यह स्थिति विकारी जीवन की ही हो सकती है।'

× × ×

इस विवरण को पढ़कर एक सज्जन ने यह सोचकर ब्रह्मचर्य पालन की आशा छोड़ दी कि गांधीजी के भीष्म प्रयत्नों के बाद भी उनकी यदि यह हालत है कि स्वप्न में अपवित्र विचार आ जाते हैं, तो हम किस खेत की मूली हैं!

× × ×

महात्माजी ने इसका जो उत्तर दिया, वह स्वर्णाक्षरों में अंकित करने योग्य है। आपने लिखा—

'केवल इतना ही जानना संसार के लिए यथेष्ट क्यों न हो कि मैं सच्चा शोधक हूं, पूरा जाग्रत् हूं, सतत प्रयत्नशील हूं और विघ्न-बाधाओं से डरता नहीं? ऐसी दलील ही क्यों दी जाये कि मेरे समान व्यक्ति जब बुरे विचारों से न बच सका, तो दूसरों के लिए कोई आशा ही नहीं है? क्यों न सोचा जाये कि वह गांधी, जो एक

समय कामवासना में डूबा हुआ था, आज यदि अपनी पत्नी के साथ भाई या मित्र के समान रह सकता है और संसार की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरियों को बहिन या बेटी के रूप में देख सकता है, तो नीच-से-नीच और पतित व्यक्ति के लिए भी उठने की आशा है। यदि ईश्वर ने इतने विकारों से भरे हुए मनुष्य पर अपनी दया दिखाई तो निश्चय ही वह दूसरों पर भी दया दिखायेगा ही। जो मेरी न्यूनताओं को जानकर पीछे हट पड़े, वे कभी आगे बढ़े ही नहीं थे। यह तो झूठी साधुता कही जायेगी, जो पहले ही धक्के में चूर हो गयी। सत्य, ब्रह्मचर्य और दूसरे ऐसे सनातन सत्य मेरे समान अपूर्ण मनुष्यों पर निर्भर नहीं करते। उनका अडिग आधार होती है उन अनेक महापुरुषों की अडिग तपश्चर्या, जिन्होंने उनके लिए प्रयत्न किया और उनका सम्पूर्ण पालन किया।'

× × ×

गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है—

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।

(6/5)

सन्त विनोबा ने इसकी व्याख्या करते हुए कितना सुन्दर कहा है—

'मैं जड़ हूं, व्यवहारी हूं, सांसारिक जीव हूं'—ऐसा कहकर अपने आसपास बाड़ मत लगाओ। मत कहो कि 'मेरे हाथों से क्या होगा?' तुम तो आगे बढ़ने की, ऊपर चढ़ने की हिम्मत रखो।

'ऐसी हिम्मत रखो कि मैं अपने को अवश्य ऊपर उठा ले जाऊंगा। यह मानकर कि मैं क्षुद्र सांसारिक जीव हूं, मन की शक्ति को मार मत डालो। कल्पना के पंख काट मत डालो। अपनी कल्पना को विशाल बनाओ। चण्डूल का उदाहरण अपने सामने रखो। प्रातःकाल सूर्य को देखकर चण्डूल कहता है कि मैं सूर्य तक उड़ जाऊंगा। वैसा हमें बनना चाहिए। अपने दुर्बल पंखों से चण्डूल बेचारा कितना ही ऊंचा उड़े, तो भी वह सूर्य तक कैसे पहुंचेगा? परंतु, अपनी कल्पनाशक्ति द्वारा वह अवश्य सूर्य को पा सकता है।'

'हमारा आचरण इससे उलटा होता है। हम जितने ऊंचे जा सकते थे, उतने भी न जाकर अपनी कल्पना और भावनाओं पर रुकावटें डाल अपने को और नीचे गिरा लेते हैं। जो शक्ति प्राप्त है, उसे भी अपनी हीन भावना से नष्ट कर लेते हैं। जहां कल्पना के ही पांव टूट गये तो फिर नीचे गिरने के सिवा क्या गति होगी? अतः कल्पना का रुख हमेशा ऊपर की ओर होना चाहिए। कल्पना की सहायता से मनुष्य आगे बढ़ता है। अतः कल्पना को सिकोड़ मत डालो।'

'आत्मा का अपमान मत कर लो। साधक के पास विशाल कल्पना होगी, आत्मविश्वास होगा, तो ही वह टिक सकेगा। इसी से उद्धार होगा। यदि उच्च आकांक्षा नहीं रखोगे, तो एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकोगे।'

× × ×

अपवित्र विचारों से मुक्त होना कठिन अवश्य है, असम्भव नहीं है। प्रयत्न किया जाये, उसके लिए जी जान से चेष्टा की जाये तो मुश्किल क्या है?

असली मुश्किल तो यह है कि हम शुरू में ही कन्धा डाल देते हैं। हम पहले से ही मान बैठते हैं कि अपवित्र विचारों से मुक्त हुआ ही नहीं जा सकता। फिर यदि अपवित्र विचार हम पर हावी रहते हैं, हमें घेरे रहते हैं, हमें पतन की ओर घसीटते रहते हैं, तो इसमें अस्वाभाविक क्या है ?

× × ×

रमण महर्षि तथा इसी कोटि के महापुरुषों के निकट जानेवालों का अनुभव है कि वहां जाते ही समस्त विकार शान्त हो जाते हैं, सभी समस्याएं स्वतः सुलझती प्रतीत होती हैं और हृदय में शान्ति, सुख और आनन्द की पावन त्रिवेणी प्रवाहित होती जान पड़ती है।

× × ×

आखिर ये भी तो हमारी-आपकी ही तरह हाड़-मांस के पुतले हैं।

जो बात इनके लिए सम्भव हो सकी, वह हमारे-आपके लिए क्यों सम्भव नहीं है?

× × ×

निश्चय ही हम-आप भी अपवित्र विचारों से मुक्त हो सकते हैं, केवल निश्चय चाहिए।

'तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।'

(कल्याण, फरवरी 2022 अंक से साभार)

परमार्थ पथ

मन मस्त हुआ तब क्यों बोले

शरीर से लेकर संसार की सारी उपलब्धियां झूठी हैं। यहां तक कि हमारे चारों तरफ जो कुछ है झूठा है; क्योंकि वह हमारे साथ रहने वाला नहीं है। हम अपने इर्द-गिर्द की चीजों को देखकर मोह और वैर करते हैं जो हमारे मन के भ्रम से उत्पन्न हैं। सारा भ्रम विवेक के मार्जन से कट जाता है। जब साधक निरंतर सब कुछ को छूटने वाला देखता है तब उसका मन ज्ञान-प्रकाश से आलोकित रहता है। वह देह में रहते हुए भी देहातीत-भाव में जीता है। सार तत्त्व तो निज अखंड स्वरूप चेतन है जो अक्षय, असंग और कल्याण रूप है। वही आज है, वही देह छूटने पर है। देह रहे तब तक भी मैं शुद्ध चेतन और देह छूट जाये तब भी शुद्ध चेतन। मैं सब समय एकरस, असंग, अनमिल, अद्वैत, अकेला, केवल और निराधार हूं। मुझे न कोई दुख है न भय। मैं मंगल स्वरूप हूं।

* * *

शीघ्र पचने वाले जलपान और भोजन करो। कड़ी भूख लगने पर खाओ और अधिक न खाओ, संतुलित खाओ। निज स्वरूप आत्मा से सारा अनात्म जड़-पदार्थ सर्वथा पृथक और अनित्य है। अतएव उनमें आस्था न रखो। अनात्म की आस्था सर्वथा नष्ट हो जाने पर आत्मा में दृढ़ आस्था होती है, और आत्मा में दृढ़ आस्था होने पर अनात्मा की आस्था सर्वथा नष्ट हो जाती है। अनात्म जो अनित्य है, छूट जाने वाला है, उसका मोह सर्वथा नष्ट होने पर मन निर्बंध हो जाता है। निर्बंध मन अंतर्मुख होता है, आत्मलीन होता है। आत्मलीनता जीवन का फल है। देह सदा के लिए नष्ट होने वाली है। फिर सोचो क्या शेष रहेगा। शेष तो तुम स्वयं हो जो सदा हो। अतएव जो अनात्मा का मोह छोड़कर सदैव आत्मलीन रहता है, वह परमानंद में रहता है।

* * *

सारा संसार परिवर्तनशील है। स्वाभाविक परिवर्तन से समय पर सब मिटता और दूसरा बनता जाता है; किंतु प्राकृतिक प्रकोप से जब होता है, तब यह प्रभावित मनुष्यों पर विपत्ति ढाता है। फिर भी मनुष्य दूसरे ढंग से कमाते-खाते हैं। मन की शुद्धि और धैर्य से ही मनुष्य सुखी रह सकता है।

* * *

सब समय विदेश से लौटकर स्वदेश में रहने वाले का सारा परिश्रम समाप्त है। पांच विषयों का जानने वाला विषय-विदेश में रहता है। जब वह अपने को ठीक से जान लेता है और विषयों की सारहीनता जान लेता है, तब विषयों से विरत होकर अपने आप में अनुरक्त हो जाता है। जो आत्मा में अनुरक्त हुआ, वह परम आनंद के धाम में पहुंच गया। अपना चेतन स्वरूप ही स्वदेश है, आनन्द धाम है, अविचल घर है, शाश्वत सदन है और वही मुक्ति-धाम है।

* * *

संसार गुण-दोषमय है। लोगों के स्वभाव भिन्न हैं। सहन, क्षमा, समता और त्याग से रहकर शांति से जीया जा सकता है। स्वयं सरल, दृढ़ और न्याय-नीति युक्त रहे और दूसरे के उपद्रव को सह ले। सारा संबंध क्षणिक है। जो लोग किसी स्थिर कल्याणकारी नीति पर नहीं रहते हैं वे बिखर जाते हैं। उन्हें आत्मप्रतिष्ठा नहीं मिलती है और समाजप्रतिष्ठा भी नहीं मिलती है। अहंकार और कामनाओं में उलझा आदमी दुख-पर-दुख पाता है। तुम सब समय सावधान रहो?

* * *

अपनी रहनी, व्यवहार तथा बरताव विवेकपूर्वक रखो। फिर यह चिंता छोड़ दो कि दूसरा तुम्हारे साथ क्या व्यवहार रखता है। तुम्हारे विवेकपूर्ण व्यवहार और

रहनी से तुम्हें शांति मिलेगी, दूसरे लोगों में जो जैसा करेगा वह वैसा भरेगा।

* * *

संपर्क के लोगों से कुछ त्रुटियां होंगी। यदि उनकी प्रतिक्रिया में उलझोगे तो उनकी त्रुटियों को लेकर उनसे मन-ही-मन लड़ोगे। इस प्रवृत्ति से तुम्हारा स्वरूप-स्थिति-अभ्यास का रत्न-समय साथियों की प्रतिक्रिया में बीतेगा और मन नरक में रहेगा जिसका अध्यास पुष्ट होकर आगे भी बहिर्मुखता का अभ्यास बढ़ेगा। यह तुम्हारी भयंकर हानि होगी। अतएव तुम साथियों की त्रुटियों पर उन्हें समझाने योग्य समझो तो समझा दो। वे माने या न माने, उनके ऊपर छोड़ दो। कौन पुत्र है, कौन शिष्य है, कौन अनुगामी है? तुम इन सबकी स्वप्न मान्यताओं की आग में न जलो। संसार बाजार है। यहां सब शराब पीये उन्मत्त हैं। तुम किसके स्वामी हो। याद रखो, अपने को दास मानो, स्वामी नहीं। सारा संसार हमसे बड़ा है।

* * *

सारा संबंध झूठा है। असंबंध और अकेलापन ही सच्चा एवं शाश्वत है। ज्ञानी सदैव शरीरांत को देखता है, अकेलापन एवं देहातीत भावना में रहता है। निर्भयता की स्थिति तभी आती है जब सब समय देहातीत की दशा देखी जाती है। देह की विद्यमानता क्षणिक है और देहातीत दशा अनन्त है। "सद्गुरु की महिमा अंनत, अंनत किया उपकार। लोचन अनंत उघारिया, अंनत दिखावनहार॥"

* * *

जीवन के झूठे संबंधों में तुम कहीं प्रतिक्रिया में न पड़ो। जीवन का शेष भाग, जिसका कोई पता नहीं है कि कब शून्य हो जाये, उसमें प्रतिक्रिया-रहित मौनभाव से जीकर आत्मशांति लो। तुम दूसरों का सुधार करोगे इस धोखा में न रहो। विरल लोग होते हैं जो विनम्र होकर निर्देश ग्रहण करते हैं। शेष सब लोग तो अपनी अहन्ता-ममता में मस्त हैं। कौन किसको मानने वाला है। स्वयं को गुरु मानने का धोखा नहीं पालना। आश्रयी जनों के लिए उचित व्यवहार कर दो और सबको मेले में मिले हुए क्षणिक साथी मानो। तुम्हारा निरंतर ध्यान होना चाहिए अपनी निर्विकल्प समाधि एवं निर्विकार विचार पर, जो तुम्हारी परम उपलब्धि है।

* * *

तुम्हारी प्रपंचशून्य कैवल्यस्थिति को दूर के या निकट के कितने लोग समझते हैं, और उनके समझने और न समझने में तुम्हारी दिव्यस्थिति में क्या अंतर पड़ता है, तुम्हारे साथ दूर के या निकट के कितने लोग तुम्हारे साथ कैसी बात और व्यवहार करते हैं, इससे तुम्हारी क्या हानि और क्या लाभ है? तुम अपनी असंग स्थिति में दृढ़ता से बने रहो, यही तुम्हारी सफलता होगी। दूसरों को अपने विषय में समझाकर कोई मुक्त नहीं हुआ है। कोई आत्मलीन पुरुष अपनी स्थिति बताने नहीं आता है। वह अपने में डूबा रहता है। "मन मस्त हुआ तब क्यों बोले।" सावधान, विनम्र होकर सबसे सिर झुकाकर अपनी दिव्य रहनी में समय व्यतीत करो। सबसे पीछे और नीचे अपने को रखो।

* * *

सारा संबंध नश्वर है। सारा द्वैत अनात्म, अनित्य, दुखपूर्ण और छुटने वाला है। मन का चिंतन छूटने वाली अनात्म वस्तुओं का नहीं होना चाहिए। आत्मा ही सदैव स्वसत्ता है जो अपने मेरे से छूटने वाला नहीं है, अतएव आत्मा का ही चिंतन होना चाहिए। जीवन धोखा है यदि उपलब्ध प्राणी, पदार्थ तथा परिस्थितियों से पूर्ण अनासक्त रहकर अंतर्मुख न रहा जाये। सब जानते हैं कि एक दिन शरीर छूट जायेगा, और तब कुछ भी मेरा नहीं रहेगा।

किंतु इस यथार्थ बोध को सब समय याद रखे बिना चित्त की पूर्ण अनासक्त दशा नहीं रह सकती, और अनासक्त रहे बिना मन का दुख नहीं मिट सकता। मैं मेरे लिए सत्य है और सारी अनात्म वस्तुएं असत हैं।

❑

कहानी

कब्रों का विलाप

लेखक—श्री खलील जिब्रान

अमीर इंसाफ की गद्दी पर बैठा। उसके दाएं-बाएं देश के विद्वान बैठे थे। उनके चढ़े हुए चेहरों पर किताबों की छाया खेल रही थी। आस-पास सिपाही तलवारें थामे और नेजे उठाये खड़े थे। सामने लोग यह देखने को खड़े थे कि किस अपराधी को क्या दंड मिलता है। सबकी गर्दनें झुकी हुई थीं। आंखों में बेबसी झलक रही थी और सांस रुकी हुई थी, मानो अमीर की आंखों में एक ऐसी ताकत थी, जो उनके दिलों पर डर और रौब गालिब कर रही थी।

अमीर ने हाथ उठाया और चिल्लाकर कहा, "मुलजिमों को एक-एक करके मेरे सामने हाजिर करो और बताओ कि उनमें से किसने क्या कसूर किया है?"

कैदखाने का दरवाजा खोल दिया गया और काली दीवारें नजर आने लगीं।

जंजीरों की झंकार सुनाई देने लगीं। उसके साथ कैदियों की आहें और रोना-पीटना भी मिला हुआ था। लोग गर्दनें उठा-उठाकर उनकी तरफ देखने लगे, मानो उस कब्र की गहराई से निकाली हुई उन मौत की शिकारों पर पहले नजर डालने में एक-दूसरे के आगे बढ़ जाना चाहते हों।

थोड़ी देर के बाद कैदखाने से दो सिपाही निकले, जिनके कब्जे में एक नौजवान था। इस नौजवान के हाथों में हथकड़ी थी और उसकी चढ़ी हुई त्यौरी तथा निडर चेहरे से उसके स्वाभिमान और आत्मिक बल का पता चलता था। उसे सिपाहियों ने अदालत के बीच में खड़ा कर दिया और खुद थोड़ा-सा पीछे हटकर खड़े हो गये। अमीर ने एक क्षण उनकी तरफ घूरकर देखा, फिर सवाल किया, "इस आदमी ने, जो हमारे सामने इस तरह सिर उठाये खड़ा है, जैसे अदालत की जकड़ में नहीं, बल्कि किसी ऊंची जगह पर खड़ा हो, क्या जुर्म किया है?"

अमीर के वजीरों में से एक ने जवाब दिया, "कल एक फौजी अफसर और चंद सिपाही देहात में काम पर गये थे। इस आदमी ने अफसर को कत्ल कर दिया। सिपाहियों ने इसे गिरफ्तार कर लिया और खून में सनी हुई तलवार कब्जे में कर ली।"

अमीर गुस्से से कांपने लगा। उसकी आंखों से आग की चिनगारियां बरसने लगीं। उसने गरजती हुई आवाज में कहा, "इसे जंजीरों में जकड़ दो और फिर उसी अंधेरी कोठरी में बंद कर दो। कल सुबह इसी की तलवार से इसकी गर्दन उड़ा दो और इसकी लाश को शहर के बाहर फेंक दो, जिससे गिद्ध और चील इसका गोश्त नोंच लें और हवा इसकी बदबू को इसके घर वालों और दोस्तों तक पहुंचा दे।"

नौजवान को वापस कैदखाने की तरफ ले जाया गया। लोगों की दुखभरी निगाहें उसके पीछे-पीछे गईं, क्योंकि वह अभी कम उम्र का था, खूबसूरत था और हट्टा-कट्टा था।

इसके बाद सिपाही एक औरत को लिये कैदखाने से निकले। यह स्त्री बहुत सुंदर और कोमलांगी थी। उसकी आंखें नीची हो रही थीं और लज्जा के मारे उसकी गर्दन झुकी थी।

अमीर ने उस पर निगाह डाली और कहा, "इस औरत ने, जो हमारे सामने ऐसे खड़ी है, जैसे सच के सामने छाया, क्या कसूर किया है?"

एक वजीर ने उत्तर दिया, "यह औरत कुलटा है। रात को जब इसका खाविंद घर आया तब उसने देखा कि यह अपने एक यार के साथ सोई हुई है। इसका दोस्त डरकर भाग गया और खाविंद ने इसे पुलिस के हवाले कर दिया।"

यह सुनकर अमीर बहुत बिगड़ा। स्त्री शर्म के मारे पानी-पानी हो गई। अमीर ने ऊंची आवाज में कहा

"इसे वापस कैदखाने में ले जाओ और कांटों के बिस्तर पर सुलाओ, ताकि यह उस बिस्तर को याद करे, जिसे इसने अपने पाप से नापाक बनाया और इसे इनार[1] मिला हुआ सिरका[2] पिलाओ, ताकि यह अपने घर के खाने को याद करे। सुबह होने पर इसे नंगा करके खींचते और घसीटते हुए शहर से बाहर ले जाओ और संगसार[3] कर दो। इसकी लाश को वहीं पड़ा रहने दो, ताकि भेड़िये इसका गोश्त खा जायें और इसकी हड्डियों को कीड़े-मकोड़े चाट लें।"

उस औरत को फिर कैदखाने की अंधेरी कोठरी में ले जाया गया। लोग उसकी तरफ अफसोस की नजरों से देख रहे थे। वह अमीर के इंसाफ पर खुश थे, लेकिन उन्हें उस स्त्री के सौंदर्य, कोमलता और उसकी दुखी आंखों पर भी रहम आ रहा था।

इसके बाद दो सिपाही अधेड़ उम्र के एक कमजोर आदमी को लिए हुए आये, जो अपने कांपते हुए घुटनों को घसीटता हुआ चलता था। उसने भीड़ की तरफ व्याकुल आंखों से देखा। उसकी आंखों में मायूसी, बर्बादी और गरीबी झलक रही थी।

अमीर ने उसपर निगाह डाली और जोश में आकर पूछा, "इस गंदे आदमी ने, जो इस तरह खड़ा है, जैसे जिंदों में मुर्दा, क्या कसूर किया है?"

वजीर ने जवाब दिया, "यह चोर है। रात के वक्त यह कलीसा[4] में जा घुसा और जोगियों ने इसे पकड़ लिया। इसकी झोली में पूजा के बर्तन पाये गये।"

अमीर ने उसकी तरफ इस तरह देखा, जैसे भूखा गिद्ध पर-कटी चिड़िया की ओर देखता है। चिल्लाकर बोला, "इसे फिर कैदखाने के अंधेरे में फेंक दो और जंजीरों में जकड़ दो। जब सुबह हो जाये तब इसे रेशमी रस्सी से एक ऊंचे पेड़ पर लटका दो और इसी तरह इसे तबतक जमीन और आसमान के बीच लटका रहने दो जबतक इसकी गुनहगार अंगुलियां सड़-गल न जाये और उनकी बदबू चारों तरफ फैल न जाये।"

सिपाही चोर को फिर कैदखाने में ले गये और लोग कानाफूसी करने लगे कि इस मरियल काफिर ने पूजा के बर्तन चुराने की हिम्मत कैसे की ?

अमीर गद्दी से उतरा और उसके विद्वान तथा बुद्धिमान सलाहकार भी उसके पीछे हो लिये, सिपाही कुछ आगे और कुछ पीछे। लोगों की भीड़ तितर-बितर हो गई और इस तरह वह स्थान खाली हो गया, अलबत्ता कैदियों की आहें और गहरी सांसें सुनाई देती रहीं।

मैं वहां खड़ा इस कानून पर हैरान हो रहा था, जो इंसान ने इंसान के लिए बनाया है। मैं उस चीज पर गौर कर रहा था, जिसे लोग इंसाफ कहते हैं। सोचते-सोचते मेरे विचार इस तरह गायब हो गये, जिस तरह शाम की लाली धुंधलके में छिप जाती है। मैं उस मकान से निकला। अपने दिल में कहता था कि घास मिट्टी से बढ़ती है, बकरी घास को खा लेती है, भेड़िया बकरी को अपनी खुराक बनाता है, गैंड़ा भेड़िये को खा जाता है और शेर गैंड़े को मौत के घाट उतारता है। क्या कोई ऐसी ताकत भी मौजूद है, जो मौत पर भी छा जाये और जुल्म के इस सिलसिले को खत्म कर दे? क्या कोई ऐसी ताकत मौजूद है, जो इन तमाम घिनौनी बातों को अच्छे नतीजे में बदल दे? क्या कोई ऐसी ताकत है, जो जिंदगी की सारी ताकतों को अपने हाथ में ले ले और अपने अंदर जज्ब कर ले—जिस तरह समुद्र सारी नदियों को अपनी गहराइयों में समा लेता है? क्या कोई ऐसी ताकत है, जो कातिल[5] को और मकतूल[6] को, बुरा काम करने वाली और उसके साथ बुरा काम करने वाले और चोर और जिसके यहां चोरी की गई उसके अमीर के आसन से ज्यादा ऊंचे न्याय के आसन के सामने खड़ा कर दे ?

दूसरे दिन मैं शहर से निकलकर खेतों की तरफ गया, ताकि मन को कुछ चैन मिले और जंगल का

1. कड़ुवा फल।
2. शराब।
3. संगसार करना-इस्लामी धर्मशास्त्र के अनुसार एक प्रकार का दंड, जिसमें व्यभिचारी को जमीन में कमर तक गाड़ देते थे और उनके सिर पर पत्थर बरसा कर उसके प्राण लेते थे।
4. गिरजा।
5. कत्ल करने वाला।
6. जिसका कत्ल किया जाता है।

मनोहर वायुमंडल दुख और मायूसी के उन जंतुओं को मार दे, जो शहर के तंग गली-कूचों और अंधेरे मकानों ने मेरे अंदर पैदा कर दिये थे। जिस वक्त घाटी में पहुंचा तो देखा कि गिद्धों, चीलों और कौओं के झुंड-के-झुंड उड़ रहे हैं और जमीन पर उतर रहे हैं। उनकी आवाजों और परों की फड़फड़ाहट से वातावरण कांप रहा है। मैं जरा आगे बढ़ा तो देखा कि मेरे सामने एक लाश पेड़ पर लटक रही है और एक नंगी औरत की बेजान देह उन पत्थरों के ढेर में पड़ी है, जिनसे उसे संगसार किया गया था। उधर एक नौजवान की लाश धूल तथा खून से सनी हुई है और उसका सिर धड़ से जुदा पड़ा है।

मैं वहीं ठहर गया। मेरी आंखों पर एक मोटा और अंधेरा पर्दा पड़ गया और मुझे कल्पना और मौत के सिवाय, जो खून में सनी उन लाशों पर छाई हुई थी, कुछ भी दिखाई नहीं देता था। बर्बादी की पुकार के अलावा मेरे कान कुछ भी नहीं सुनते थे। इस पुकार में कौओं की आवाज भी मिली हुई थी, जो इंसानी कानून के शिकारों के चारों तरफ मंडरा रहे थे।

तीन इंसान कल तक जिंदा थे, आज सुबह मौत के मुंह के चले गये। तीन आदमियों ने इंसान के अस्तित्व में अपनी निष्ठा को खो दिया और अंधे कानून ने हाथ बढ़ाकर उन्हे बेदर्दी के साथ पामाल कर दिया।

तीन आदमियों को जेल ने कसूरवार ठहराया, क्योंकि वे कमजोर थे और कानून ने उन्हें मौत के घाट उतार दिया क्योंकि वह ताकतवर था। एक आदमी ने दूसरे को कत्ल कर दिया था तो वह कातिल (खूनी) ठहरा; लेकिन जब अमीर ने उसे कत्ल करवा दिया तो वह अमीर इंसाफ करने वाला समझा गया!

एक शख्स ने पूजा का सामान ले लिया तो लोगों ने उसे चोर कहा, लेकिन जब अमीर ने उसकी जिंदगी छीन ली तो वह अमीर विद्वान ठहरा!

एक औरत ने अपने पति से बेईमानी की तो लोगों ने उसे कुलटा ठहराया, लेकिन जब अमीर ने उसे नंगा करके संगसार करवाया तो वह अमीर शरीफ कहलाया!

खून बहाना हराम है, लेकिन अमीर के लिए यह किसने हलाल कर दिया?

माल हड़प करना जुर्म है, लेकिन आत्माओं को हड़प करना किसने जायज करार दिया?

औरतों की बेईमानी खराब बात है, लेकिन यह किसने कहा कि खूबसूरत देहों को संगसार करना पाक काम है?

हम छोटी-सी बदमाशी के मुकाबले में बहुत बड़ी बदमाशी करते हैं और कहते हैं कि यह कानून है। हम फिसाद का बदला बदतरीन फिसाद से देते हैं और कहते हैं कि यह शील है। हम एक अपराध का बदला लेने के लिए दूसरा बड़ा अपराध करते हैं और चिल्लाते हैं कि यह इंसाफ है!

क्या अमीर ने कभी अपने दुश्मन को मौत के घाट नहीं उतारा? क्या उसने कभी अपनी प्रजा के किसी कमजोर इंसान का माल हड़प नहीं किया? क्या उसने कभी किसी खूबसूरत औरत की ओर आंख नहीं उठाई? क्या वह इन तमाम जुर्मों से पाक है कि जिससे कातिल की गर्दन उड़ाना, चोर को सूली चढ़ाना और व्यभिचारिणी को संगसार करना उसके लिए जायज हो गया? वे कौन थे, जिन्होंने चोर को दरख्त पर लटकाया? क्या आसमान से फरिश्ते उतरे थे या वे वही इंसान थे, जो उस माल को, जो उनके हाथ में आ जाता है, हड़प लेते हैं?

और उस व्यभिचारिणी को किसने संगसार किया था? क्या उस काम के लिए पाक रूहें अपने स्थानों से आई थीं? या वे वही लोग थे, जो अंधेरे के पर्दे में बुरा काम किया करते हैं?

कानून!...कानून क्या चीज है? उसे आसमान की ऊंचाइयों से सूरज की किरणों के साथ उतरते किसने देखा है? और किस आदमी ने खुदाई इच्छा को इंसान के दिल से मिला-जुला पाया है? और किस खानदान में फरिश्तों ने आकर इंसानों से कहा है कि कमजोरों को जिंदगी की रोशनी से महरूम कर दो, गिरे हुए को तलवार से उड़ा दो और कसूर करने वाले को फौलादी पांवों के नीचे रौंद डालो?

मेरे दिमाग में यही विचार चक्कर लगा रहे थे और मुझे परेशान कर रहे थे कि इतने में मैंने किसी के पैरों की आहट सुनी। आंख उठाई तो देखा कि एक औरत

पेड़ों में से निकलकर लाशों के करीब आ रही है। उसके चेहरे पर खतरे के निशान दिखाई दे रहे थे, मानो वह उस भयावने नजारे को देखकर डर गई हो। वह उस लाश की तरफ बढ़ी, जिसका सिर कटा हुआ था और चीख-चीखकर रोने लगी। अपनी कांपती हुई बांहों से उसने लाश को गले लगाया। उसकी आंखों से आंसुओं की झड़ी लगी थी। वह अपनी उंगलियां लाश के बालों पर फेर रही थी। जब थक गई तो उसने अपने हाथों से जमीन खोदना शुरू किया, यहां तक कि एक लंबी-चौड़ी कब्र खोद ली। फिर उसने उस नौजवान की लाश को उठाकर कब्र में रख दिया। उसका कटा हुआ और खून से लथपथ सिर उसके कंधों पर रख दिया और कब्र को मिट्टी से ढांककर उसके ऊपर उस तलवार के फल को गाड़ दिया, जिससे उसका सिर काटा गया था। इसके बाद उसने आंसू बहाते हुए मुझसे कहा, "अमीर से कह दो कि बजाय इसके कि मैं उस इंसान की लाश को, जिसने मुझे बेइज्जती के कब्जे से छुड़ाया, जंगल के खूंख्वार जानवरों और परिंदों के खाने के लिए छोड़ दूं, मेरे लिए बेहतर है कि मैं मर जाऊं और उस आदमी से जा मिलूं।"

मैंने उससे कहा, "ओ दुखी औरत, मुझसे डरो मत, क्योंकि मैं तुमसे पहले इन मैयतों पर विलाप कर चुका हूं, लेकिन मुझे यह तो बताओ कि इस आदमी ने तुम्हें बेइज्जती के कब्जे से किस तरह बचाया था?"

उसने टूटती हुई आवाज में जवाब दिया, "अमीर का एक अफसर हमारे खेतों में लगान और जजिया वसूल करने आया था; लेकिन जब उसने मुझे देखा तो उसकी नीयत में बदी आ गई। इसके बाद उसने मेरे बाप की तरफ भारी रकम निकाल दी और चूंकि मेरे गरीब बाप यह रकम अदा नहीं कर सकते थे, उस अफसर ने गुस्से में आकर रुपये के बदले में मुझ पर कब्जा कर लिया, इस खयाल से कि मुझे अमीर के महल में पहुंचा दे। मैंने उससे बाप के बुढ़ापे की तरफ ध्यान देने की मिन्नत की, लेकिन वह न पसीजा। तब मैंने चिल्ला-चिल्लाकर गांववालों को इकट्ठा किया और उनके सामने फरियाद की। उस पर यह नौजवान, जिसके साथ मेरी मंगनी हो चुकी थी, आया और उसने मुझे अफसर के हाथों से छुड़ाया। अफसर ने गुस्से में आकर उसे कत्ल कर देना चाहा, लेकिन नौजवान ने फुर्ती के साथ अपने को बचाया और दीवार से लटकती हुई पुरानी तलवार खींचकर उसने अपने ऊपर के हमले के जवाब में और मेरे शरीर के बचाव के लिए अफसर को कत्ल कर दिया। इसके बाद वह अपनी इज्जत के लिए मकतूल की लाश के पास ही खड़ा रहा। आखिकार सिपाहियों ने उसे गिरफ्तार करके कैदखाने में डाल दिया।"

यह कहते-कहते उसने मेरी तरफ दिल को पिघलानेवाले निगाह से देखा, फिर जल्दी से पीठ मोड़कर चल दी। उसकी दर्दनाक आवाज हवा में गूंजती रही।

थोड़ी देर के बाद मैंने एक नौजवान को आते देखा, जिसने अपना चेहरा कपड़े से ढांक रखा था। वह व्यभिचारिणी की लाश के पास पहुंचकर रुक गया। उसने अपना कुर्ता उतारकर उससे उस नंगी औरत को ढांक दिया और अपने खंजर से जमीन खोदने लगा। कब्र तैयार हो गई तो उसने उस औरत को उसमें दफना दिया। जब यह काम पूरा हो गया तो उसने इधर-उधर से कुछ फूल तोड़कर उनका एक गुलदस्ता बनाया और उस कब्र पर रख दिया। जब वह जाने लगा तो मैंने उसे रोक लिया और कहा, "इस औरत के साथ तुम्हारा क्या ताल्लुक था कि तुमने अमीर की इच्छा के खिलाफ और अपनी जिंदगी खतरे में डालकर इसके लिए इतनी मेहनत की और इसकी देह को कौओं और चीलों की खूराक बनने से बचाया ?"

नौजवान ने मेरी तरफ देखा। उसकी आंखों से मालूम हो रहा था कि वह बहुत रोया-धोया है और उसने सारी रात जागते हुए बिताई है। वह बहुत दुख और मायूसी-भरी आवाज में बोला, "मैं वही बदनसीब आदमी हूं, जिसकी वजह से इस बेचारी को संगसार किया गया। हम एक-दूसरे को तभी से चाहते थे, जबकि हम बचपन के दिनों में इकट्ठे खेला करते थे। हम जवान हो गये और हमारी मुहब्बत भी पूरी तरह उभर आई। एक बार जब मैं शहर चला गया था, लड़की के बाप ने उसकी शादी जबरदस्ती किसी आदमी के साथ कर दी। मैं वापस आया और मैंने यह खबर सुनी

तो मेरी जिंदगी में अंधेरा छा गया और मुझे जीना दूभर हो गया। मैं अपनी भीतरी इच्छा के साथ बहुत झगड़ता रहा, लेकिन परास्त हो गया। मेरी मुहब्बत मुझे इस तरह लेकर चल दी जिस तरह आंखों वाला किसी अंधे को रास्ता दिखाता है। मैं छिपकर उसके घर पहुंचा, ताकि उसकी आंखों का नूर देखूं और उसकी आवाज का गीत सुनूं। मैंने उसे अकेली पाया। वह अपनी किस्मत को रो रही थी और अपनी जिंदगी पर अफसोस कर रही थी। मैं उसके पास बैठ गया। हम चैन से बातें करने में मगन हो गये और खुदा जानता है कि हमारे दिल पाक थे। लेकिन जब एक घंटा गुजर गया तो एकाएक उसका खाविंद आ गया। उसने जब मुझे देखा तो वह गुस्से से पागल हो गया। उसने अपनी औरत के गले में कपड़ा डालकर शोर मचाना शुरू कर दिया, "लोगो! आओ! और इस औरत और उसके यार को देखो!" अड़ोसी-पड़ोसी जमा हो गये और थोड़ी देर में पुलिस वाले भी खबर पाकर आ पहुंचे। उस आदमी ने अपनी औरत को पुलिस के सख्त हाथों में दे दिया, जो उसे घसीटते हुए थाने की तरफ ले गये। लेकिन किसी ने भी मुझ पर हाथ न उठाया, क्योंकि अंधा कानून और गंदी रूढ़ियां औरत का ही पीछा करती हैं, मर्द का तो हर कसूर माफ समझा जाता है।"

यह कहानी सुनाने के बाद नौजवान अपना मुंह छिपाये शहर की तरफ चल दिया और मुझे लाश की तरफ देखते हुए छोड़ गया, जो पेड़ से लटक रही थी और हवा के झोंकों से पेड़ की शाखाओं के पास हिल रही थी, मानो वह रूहों से दया की मांग कर रही हो, और चाहती हो कि उसे नीचे उतारकर जमीन पर इंसानियत के प्रेमियों और मुहब्बत के शहीदों के पहलू में डाल दिया जाये।

एक घंटे के बाद एक दुबली-पतली औरत आ पहुंची, जिसके कपड़े चिथड़े हो रहे थे। वह पेड़ से लटकती हुई लाश के करीब आकर ठहर गई और उसने रो-पीटकर अपने दिल को हलका किया। इसके बाद वह पेड़ पर चढ़ गई और उसने अपने दांतों से रेशमी रस्सी को खोला। लाश गीले कपड़े की तरह जमीन पर आ गई। औरत पेड़ से नीचे उतरी और उसने दो कब्रों के पहलू में तीसरी कब्र खोदी और उसमें लाश को दफन कर दिया। जब वह कब्र पर मिट्टी डाल चुकी तो उसने लकड़ी के दो टुकड़े लेकर उनका सलीब बनाया और उसे कब्र के सिरहाने गाड़ दिया। जब वह जाने लगी तो मैंने बढ़कर सवाल किया, "औरत, तुम्हें किस बात ने मजबूर किया कि तुम एक चोर को दफन करने के लिए यहां आओ?"

उसने मेरी तरफ देखा। उसकी निगाहों से परेशानी और बेचैनी के निशान दिखाई दे रहे थे। उसने कहा, "यह मेरा खाविंद, मेरी जिंदगी का साथी और मेरे बच्चों का बाप है। हमारे पांच बच्चे भूखों मर रहे हैं। उनमें सबसे बड़ा आठ साल का है और सबसे छोटा अभी दूध पीता है। मेरा खाविंद चोर न था। वह गिरजाघर की जमीन में खेतीबाड़ी करता था और उसे गिरजाघर के जोगी इतना ही मेहनताना देते थे कि अगर हम शाम को खाना खा लेते तो सुबह के लिए हमारे पास कुछ न बचता। जब मेरा खाविंद जवान था तो वह गिरजाघर के खेतों को अपने पसीने से सींचता था और अपनी बांहों की ताकत से वहां के बागों को हरा-भरा रखता था। लेकिन जब वह बूढ़ा हो गया और जब सालों की मेहनत ने उसकी ताकत को खत्म कर दिया और बीमारियों ने उसे घेर लिया तो उन्होंने उसे यह कहकर नौकरी से हटा दिया कि 'गिरजा को अब तुम्हारी जरूरत नहीं है, अब तुम चले जाओ। जब तुम्हारे बेटे जवान हो जायें तो उन्हें यहां भेज देना, ताकि वे तुम्हारी जगह ले लें।' मेरा खाविंद उनके सामने बहुत रोया-धोया। उसने ईसा-मसीह के नाम पर उनसे दया की भीख मांगी और उन्हें फरिश्तों तथा मसीहे साथियों की कसमें दिलाई; लेकिन उन्होंने दया न की और न उस पर मेहरबानी की—न मुझपर, न हमारे बच्चों पर।

"मेरा खाविंद शहर में गया ताकि कोई नौकरी ढूंढे, लेकिन नाकामयाब होकर लौटा, क्योंकि उन महलों के रहने वाले सिर्फ जवान आदमियों को नौकर रखते थे। इसके बाद वह सड़क पर बैठ गया, ताकि लोगों से दान या भीख मिले। लेकिन किसी ने उसकी तरफ निगाह न की, लोग कहते थे, 'ऐसे इंसान को भीख या खैरात देना मजहब के खिलाफ है।'

आखिर एक ऐसी रात आ पहुंची, जब हमारे बच्चे भूख के मारे जमीन पर तड़प रहे थे। मेरा दुधमुंहा बच्चा मेरी छाती को चुसता था, लेकिन वहां दूध कहां था! यह नजारा देखकर मेरे खाविंद का चेहरा बदल गया। वह अंधेरे के परदे में चुपके-से निकला और गिरजाघर के भंडार में पहुंच गया, जहां जोगी और पादरी अनाज और शराब जमा करके रखते हैं। मेरा खाविंद ने अनाज की एक झोली भरकर अपने कंधे पर उठाई और बाहर निकलना चाहा, लेकिन वह कुछ ही गज गया था कि चौकीदार जाग उठे और उन्होंने उस गरीब को पकड़ लिया। उन्होंने उसे गालियां दीं, खूब मारा-पीटा और जब सुबह हुई तो यह कहकर पुलिस के हवाले कर दिया कि यह चोर है और गिरजाघर के सोने के बर्तन चुराने आया था।'

पुलिस ने उसे कैदखाने में डाल दिया। उसके बाद इसे पेड़ से लटका दिया गया ताकि गिद्ध इसके गोश्त से अपना पेट भरें! इसका कसूर क्या है? सिर्फ इतना ही कि इसने इस बात की कोशिश की थी कि इसके भूखे बच्चे उस अनाज से अपना पेट भरें, जो इसने अपनी बाजुओं की ताकत से उन दिनों जमा किया था, जबकि वह गिरजाघर का नौकर था।''

इतना कहकर वह गरीब औरत चली गई, लेकिन उसकी बातों ने सारे वायुमंडल को उदास और दुखी बना दिया। ऐसा मालूम होने लगा मानो उसके मुंह से धुएं के बादल निकलकर हवा में दुख का वातावरण पैदा कर रहे हैं।

मैं उन कब्रों के पास खड़ा रहा, जिनकी मिट्टी के जरों से फरियादें निकल रही थीं। मैं खड़ा सोच रहा था कि अगर इस खेत के पेड़ों से मेरे दिल की आग की लपट छू जाये तो ये हलचल करने लग जायें और अपनी जगह छोड़कर अमीर और उसके सिपाहियों से जूझ पड़े और गिरजाघर की दीवारों को तोड़-फोड़कर पादरियों के सिर पर गिरा दें।

मैं उन नई कब्रों की ओर देख रहा था। मेरी निगाह से हमदर्दी की मिठास और दुख और अफसोस का कड़वापन निकल रहा था।

यह एक नौजवान की कब्र है, जिसने अपनी जिंदगी को एक अबला औरत की इज्जत बचाने के लिए निछावर कर दिया। इसने उस औरत को भेड़िये के मुंह से छुड़ाया और इस बहादुरी के लिए इसकी गर्दन उड़ा दी गई! उस औरत ने अपने रहबर की कब्र पर तलवार गाड़ दी है, जो इस नौजवान की बहादुरी की तरफ इशारा करती है।

यह कब्र उस औरत की है, जो मारी जाने से पहले प्रेम की पुतली थी। इसे संगसार किया गया, क्योंकि वह मरते दम तक पाक रही। इसके दोस्त ने इसकी कब्र पर फूलों का गुच्छा रख दिया है, जो प्रीति की सुगंध की तरफ इशारा करता है।

और यह उस बदनसीब गरीब की कब्र है, जिसकी बाजुओं में जबतक ताकत थी तबतक वह गिरजाघर के खेतों में खेती-बाड़ी करता रहा, लेकिन जब उसमें ताकत न रही तो उसे निकाल दिया गया। वह काम करके अपने बच्चों का पेट पालना चाहता था, लेकिन उसे काम न मिला। फिर उसने भीख मांगना चाहा, लेकिन किसी ने उसे भीख न दी। आखिरकार जब इसकी मायूसी हद से ज्यादा बढ़ गई तो इसने उस अनाज में से थोड़ा-सा उठाना चाहा, जो उसने अपना खून-पसीना एक करके जमा किया था। इसे पकड़ लिया गया और इसकी जान ले ली गई। इसकी औरत ने इसकी कब्र पर सलीब बना दिया है, ताकि रात के सूनेपन में आसमान के तारे पादरियों के जुल्म को देखें, जो मसीह की सिखावन को फैलाने का दावा तो करते हैं; लेकिन असलियत में तलवारों से दुखियों और कमजोरों की गर्दनें उड़ाते हैं।

सूरज छिप रहा था, मानो वह आदमियों के जुल्म और अत्याचारों से तंग आ गया हो और उनसे नफरत करता हो। शाम अपने घूंघट में सारी दुनिया को छिपा रही थी। मैंने आसमान की तरफ देखा और कब्रों के राज पर हाथ मलते हुए ऊंची आवाज से कहा, ''यह है तुम्हारी तलवार, ऐ बहादुर मर्द, जो जमीन में गड़ी है; ये हैं तुम्हारे फूल, ऐ औरत, जिनसे प्रीति की किरणें निकल रही हैं; और यह है तुम्हारा सलीब, ऐ ईसामसीह, जो रात के अंधेरे में छिप रहा है!''

(विद्रोही आत्माएं से साभार)

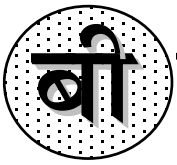

बीजक चिंतन

साथियों की चिन्ता न कर सत्य के उपासक बनो

शब्द-113

झूठेहि जनि पतियाउ हो, सुनु सन्त सुजाना॥ 1॥
तेरे घट ही में ठग पूर है, मति खोवहु अपाना॥ 2॥
झूठे की मण्डान है, धरती असमाना॥ 3॥
दशहुँ दिशा वाकी फन्द है, जीव घेरे आना॥ 4॥
योग जप तप संयमा, तीरथ ब्रत दाना॥ 5॥
नौधा बेद कितेब है, झूठे का बाना॥ 6॥
काहू के बचनहिं फुरे, काहू करामाती॥ 7॥
मान बड़ाई ले रहे, हिन्दू तुरुक जाती॥ 8॥
बात ब्योंते असमान की, मुद्दति नियरानी॥ 9॥
बहुत खुदी दिल राखते, बूड़े बिनु पानी॥10॥
कहहिं कबीर कासों कहौं, सकलो जग अन्धा॥11॥
साँचे से भागा फिरै, झूठे का बन्दा॥12॥

शब्दार्थ—पतियाउ= विश्वास करना। सुजाना= सुजान, ज्ञानी। घट= हृदय। ठग= छली मन। पूर= विद्यमान। अपाना= अपनापन, आत्मज्ञान, आत्मगौरव, होशहवास। मण्डान= घेरा, शृंगार। वाकी= मन की। नौधा= नौधा भक्ति—श्रवण, कीर्तन, नामस्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दासभाव, सखापन तथा आत्मनिवेदन। कितेब= किताब, कुरान आदि। बाना= वेष, पहनाव, पोशाक, मुलम्मा। बचनहिं फुरे= वाचासिद्धि, वर-शाप देने की शक्ति। करामाती= करामात दिखाने वाला, चमत्कार प्रदर्शित करने वाला। ब्योंते= नापते हैं। मुद्दति= काल, अवधि। खुदी= अहंकार, गर्व। बूड़े बिनु पानी= (मुहावरा) तुच्छ बातों को लेकर पतित होना। अन्धा= विवेकहीन। बन्दा= दास, गुलाम।

भावार्थ—हे ज्ञानी संतो ! सुनो, झूठी बातों पर विश्वास नहीं करना ॥ 1॥ सावधान ! तुम्हारे हृदय ही में मन-ठग बैठा है, उसमें मिलकर आत्मगौरव तथा अपने होशहवास को नहीं खो देना॥ 2 ॥ धरती से आकाश तक सारे संसार में झूठे का ही शृंगार है ॥ 3 ॥ दसों-दिशाओं में मन-काल का जाल फैला है। उसने मानो आक्रमणकारी की भांति आकर जीव को घेर लिया है ॥ 4 ॥ यहां तक कि मन ने योग, जप, तप, संयम, तीर्थ, व्रत, दान, नौधाभक्ति, वेद, कुरान आदि पर भी झूठे का मुलम्मा चढ़ा रखा है ॥ 5-6 ॥ कोई तो वाचा-सिद्धि का ढोंग दिखाकर शाप और वर देने की धमकी तथा प्रलोभन दे रहा है और कोई छल-कपटपूर्वक आश्चर्य भरे लगने वाले करतब दिखाकर अपने आप को चमत्कारी सिद्ध कर रहा है ॥ 7॥ उधर हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियों के लोग अपनी-अपनी मान-बड़ाई की डींगें हांक रहे हैं॥ 8 ॥ ये बातें तो आकाश की करते हैं, परन्तु मलिनता भरे राग-द्वेष में जिन्दगी खो देते हैं॥ 9 ॥ ये अपने मन में बड़प्पन का बहुत अहंकार रखते हैं और तुच्छ बातों में पड़कर अत्यन्त घिनौने काम करते हैं ॥ 10 ॥ कबीर साहेब कहते हैं कि यह सब मैं किससे कहूं, सारा संसार तो विवेकहीन बना है। सच्ची राह बताने वालों से दूर भागते हैं और मिथ्या महिमा का मुलम्मा चढ़ाकर झूठी राह में ले जाने वालों की गुलामी करते हैं ॥ 11-12 ॥

व्याख्या—कबीर साहेब की एक-एक पंक्ति में आग भरी हुई है, जिसका यदि अपने जीवन में प्रयोग किया जाये तो जीवन का सारा कूड़ा-कचड़ा जल जाये। बारह पंक्तियों का यह शब्द कितना मार्मिक, कितना विदग्धात्मक तथा कितना हृदयस्पर्शी है, यह सोचते ही बनता है। सद्गुरु पहली पंक्ति में कहते हैं—"झूठेहि जनि पतियाउ हो, सुनु सन्त सुजाना॥" हे सुजान संतो ! झूठी बातों पर विश्वास मत करना। धर्म के नाम पर झूठी बातें खूब चलती हैं। एक राजनेता, वकील तथा व्यापारी जितना झूठ नहीं बोलता उतना झूठ एक धर्माधिकारी बोलता है। दूसरे लोग तो लुक-छिपकर झूठ बोलते हैं और यदि पकड़ जायें तो कानूनन दंड भी पा सकते हैं, परन्तु धार्मिक कहलाने वाले लोग धर्म की गद्दी पर बैठकर हजार के बाजार में घोषणापूर्वक झूठ बोलते हैं, और उनके एक-एक बड़े झूठ पर फूल उछालकर तथा जय बोलाकर उनका स्वागत

किया जाता है। उनकी पूजा तथा आरती की जाती है। जो विश्व के शाश्वत नियमों, कारण-कार्य-व्यवस्था तथा प्रकृति के गुण-धर्मों के भीतर नहीं है वह कथन मनुष्य के साथ एक छलावा है। साहेब कहते हैं कि हे सन्तो ! ऐसी झूठी बातों पर विश्वास नहीं करना, चाहे उसके पीछे कितना ही आप्तप्रमाण का दावा किया गया हो। विश्व के शाश्वत नियम अपने आप ही प्रमाण हैं। उनके विरुद्ध जो कुछ है अप्रमाण है।

"तेरे घट ही में ठग पूर है, मति खोवहु अपाना।" सद्गुरु कहते हैं कि तुम्हारे हृदय में मन-ठग बैठा है। देखना उसके छल-कपट में पड़कर तुम अपने होशहवास को खो नहीं देना। बाहर के लोग धोखा देकर, झूठ बोलकर तुम्हें छलते हैं। ऐसे धोखेबाज तथा झूठे धार्मिक क्षेत्र में भी हैं तथा व्यावहारिक क्षेत्र में भी। परन्तु सद्गुरु कहते हैं कि सबसे बड़ा झूठा और ठग तो तुम्हारे घट-भीतर बैठा है, वह है मन। मन तुम्हारे भीतर बैठा हर समय तुम्हें छल रहा है। वह गंदे शरीर को तुम्हारे सामने खूबी से रमणीय प्रदर्शित करता है, पतनकारी काम-वासना को आनंदरूप सिद्ध करता है। इसी प्रकार सारी मलिनताओं पर वह पवित्रता का स्वर्णिमवरक लगाकर तुम्हें छलता है। मन तुम्हें कब धोखा दे जाता है, इस पर ध्यान रखो। यह धोखेबाज मन ही तो है जो सारी अनुपस्थित अमंगलकारी चीजों को उपस्थित के समान याद दिला-दिलाकर तुम्हें ठगता है। तुम वस्तुतः साठ वर्ष के हो और मन याद करा रहा है तुम बीस वर्ष के हो, तुम तथ्यतः झोपड़ी में हो और मन याद करा रहा है तुम महल में हो। इसी प्रकार अनेक झूठी बातों से मन तुम्हें क्षण-क्षण ठग रहा है। साहेब कहते हैं कि हे सन्तो ! हे सज्जनो ! इस झूठे मन के जाल में मिलकर "मति खोवहु अपाना" अपनापन को, आपा को, अपने होशहवास को मत खोओ। मन के भटकाव में पड़कर अपने आप को मलिनता में डाल देना ही अपने आप को खोना है। मन का गलत स्मरण, वाणी का गलत उच्चारण तथा इन्द्रियों का गलत आचरण—यही अपने आप को खोना है, यही अपने आप का पतन है। सद्गुरु कहते हैं कि मन से सावधान रहना तथा अपने आप का पतन नहीं करना।

"झूठे की मण्डान है, धरती असमाना। दशहुँ दिशा वाकी फंद है, जीव घेरे आना।" धरती से आकाश तक जितना शृंगार है, झूठा है। मन के फंदे तो दसों दिशाओं में फैले हैं। उसने तो मानो तुम्हें हमलावर की तरह घेर लिया है। यह जीव अपने स्वरूप को क्षण-क्षण क्यों भूलता रहता है? क्योंकि यह संसार के शृंगार में, चमक-दमक में फंसता रहता है। साहेब कहते हैं कि संसार के सारे शृंगार झूठे हैं। मंडान कहते हैं घेरा को, शृंगार को एवं चमक-दमक को। धरती से आकाश तक जितने फैले हुए दृश्य मन को मोहित करते हैं वे झूठे हैं, क्योंकि वे क्षणिक हैं। जैसे युवती पत्नी, सुन्दर बच्चे, सुन्दर भवन, मित्र, गोष्ठी, शासन, स्वामित्व, प्रतिष्ठा, सजी फुलवारियों तथा मनोहर वनों का विहार, देश-विदेश के चमकते दृश्य, नदी, पर्वतों की मनोरमता, बादलों की श्यामता, वर्षा, शरद, वसंत एवं ग्रीष्म के आकर्षक दृश्य—सब कुछ तो क्षणभंगुर है। हम जिन दृश्यों में मोह कर अपनी स्थिति से दूर रहते तथा समय नष्ट करते हैं वे नित्य एकरस रहने वाले नहीं हैं और शरीर के साथ एक दिन तो सब छूटने वाले ही हैं। मन के जाल दसों दिशाओं में फैले हैं। पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण, इन चारों के चारों कोने—आग्नेय, नैऋत, वायव्य तथा ईशान और ऊपर तथा नीचे—ये दस दिशाएं मानी गयी हैं। यहां दसों दिशाओं का लक्षणा अर्थ है सर्वत्र। मन के फंदे तो सर्वत्र फैले हैं। इसका अर्थ है कि इस भावुक तथा अविवेकी जीव के फंसने के लिए हर जगह मोहक फंदे हैं। विवेक से देखने पर संसार में कुछ भी मोहक नहीं है; परन्तु इस अविवेकी मन ने जैसी गलत आदतें एवं वासनाएं बना ली हैं उनके कारण यह पदे-पदे उलझता रहता है। जैसे हमलावर शत्रु पर धावा बोलकर उसे घेर लेते हैं, जैसे जल पर फैली हरी काई जल पर छा जाती है, वैसे मन की वासनाएं मनुष्य पर छा जाती हैं। मन ने जीव को चारों तरफ से घेरकर उसे विषयासक्त बना दिया है। वस्तुतः जीव अपने दिव्य स्वरूप को भूलकर मन के जाल में उलझा हुआ दुख पा रहा है।

केवल व्यावहारिक क्षेत्र में मन का जाल फैला है ऐसी बात नहीं है, किन्तु धार्मिक क्षेत्र में भी मन के जाल

का वर्चस्व है। साहेब कहते हैं "योग जप तप संयमा, तीरथ ब्रत दाना। नौधा बेद कितेब है, झूठे का बाना।" योग, जप, तप, संयम, व्रत, दान, नौधा भक्ति, वेद, कुरान आदि सभी को मन ने झूठे का जामा पहना दिया है। मन धोखेबाज है तो धार्मिक क्षेत्र में भी यह अपना धोखा फैलाता है। वस्तुतः जीव विषयासक्त हो गया है। इसलिए वह अपनी विषय-लोलुपता को पूर्ण करने के लिए धर्म के क्षेत्र को भी धूमिल करता है। योग मन का निग्रह है, जप सावधानी है, तप शारीरिक-मानसिक सहनशीलता है, संयम गलत खान-पान तथा बात-व्यवहार से बचना है, तीर्थ सत्संग है, व्रत सदाचार-पथ पर चलने की प्रतिज्ञा है, दान निष्काम भाव से एवं कर्तव्य दृष्टि से किसी प्रकार किसी की सेवा करना है, भक्ति हृदय की कोमलता है तथा वेद-किताबादि संसार के धर्मशास्त्र हैं जिनमें नीर-क्षीर विवेक कर सदैव क्षीर को एवं सत्य को ही ग्रहण करना चाहिए। इस ढंग से इन्हें ग्रहण करने से मनुष्य का कल्याण है। परन्तु योग, जपादि के नाम पर पाखंड फैल गये हैं। लोग इनका नाम लेकर आत्म-प्रवंचना तथा लोक-प्रवंचना करते हैं। लोग योग के नाम पर ऋद्धि-सिद्धि आदि के झूठे जाल फैलाते हैं; जप के बल पर अनिष्टहरण तथा इष्टसिद्धि का झांसा देते हैं; तप के नाम पर अग्नितापन, जलशयनादि हठधर्मिता का व्यवहार कर समाज को गलत दिशा देते हैं; संयम[1] के नाम पर अनेक कल्पित सिद्धियों का भ्रम फैलाते हैं; तीर्थ के नाम पर गया-प्रयागादि पाप काटने तथा मुक्ति देने के ठेकेदार हो ही गये हैं, व्रत के नाम पर अविवेकपूर्ण लंबे-लंबे उपवास होते हैं जिसके फल में स्वर्ग मिलने का झांसा दिया जाता है। दान में भी दिखावा, अहंकार तथा किसी-न-किसी प्रकार प्रतिलाभ की वासना हो गयी है; नौधा भक्ति के नाम पर लीला, रास, लल्ली-लल्ला का राग-रंग तथा आत्महीनता का प्रदर्शन हो गया है; और वेद-किताब के नाम पर विवेक छोड़कर तथाकथित प्रभुवाणी की दोहाई का प्रपंच फैल गया है। यही सब तो इन पर झूठे का बाना, झूठे का लबादा चढ़ गया है। जो कल्याणकारी पक्ष थे मनुष्यों की मन-मलिनता के नाते वे सब अकल्याणकारी बन गये। "ठांव गुण काजर ठांव गुण कारी" वही आंख में लगने पर काजल कहलाता है तथा गाल में लगने पर कालिख। विवेकपूर्वक जो भी हो वह मनुष्य का कल्याण करता है और वही अविवेकपूर्वक होने से अकल्याणकारी होता है। जो अन्न मनुष्य को जीवनदाता है, उसी का दुरुपयोग करने से वह मृत्युदाता भी होता है। मलिन मन सब कुछ का दुरुपयोग कर देता है। इसलिए हम मन से सावधान रहें।

"काहू के बचनहिं फुरे, काहू करामाती।" अजीब संसार है। कोई अपनी वाचासिद्धि का झांसा देकर समाज को बेवकूफ बना रहा है और कोई चमत्कारी बना लोगों को ऋद्धि-सिद्धि देता फिरता है। शाप और वर देने का झांसा पुराकाल में बहुत चलता था। पुराणों को पढ़िए तो उनमें शाप और वर से प्रायः कथाएं व्याप्त हैं। यह धार्मिक कहलाने वाले लोगों का समाज पर दबदबा कायम रखने का हथकंडा था। शाप का भय तथा वर का प्रलोभन देकर वे समाज को अपनी ओर झुकाये रखने की चाल चलते थे। ईश्वर और सिद्धि की कल्पना इस झांसे में सहायक बनती थी। कहा जाता था कि जो लोग ईश्वर और सिद्धि तक पहुंचे हैं वे जो चाहें सो कर दें। ब्राह्मण नामधारी तो स्वतः सिद्ध था। उसका जीवन जैसा भी हो, उसके मुख में अग्नि का वास माना जाता था। वह जो कह दे वही होगा। इसी से मिलते-जुलते करामात दिखाने वाले लोग होते थे। करामत का अर्थ है चमत्कार। करामत का करामात बहुवचन है। करामाती उसे कहते हैं जो करामात दिखाता है अर्थात चमत्कारी। कुछ भोले लोग चमत्कार को आध्यात्मिक शक्ति मानते हैं। किन्तु तथ्य यह है कि सारे चमत्कार केवल छल-कपट के प्रयोग होते हैं। किसी के लिए भी प्रकृति के नियम बदलते नहीं हैं। साधारण-से-साधारण आदमी से लेकर बड़े-से-बड़े महात्मा एवं

1. किसी एक ध्येय में जब धारणा, ध्यान तथा समाधि हो जाती है तब इस एकाग्रता को संयम कहते हैं। सूर्य में संयम कर लेने पर समस्त लोकों का ज्ञान हो जाता है, प्रकाश में संयम कर लेने पर परदे के भीतर पड़ी देश-विदेश की वस्तुओं का ज्ञान हो जाता है। इसी प्रकार अनेक संयम से अणिमा, महिमा, लघिमा आदि कल्पित सिद्धियों की प्राप्ति का झूठा प्रचार किया जाता है। देखिये योग दर्शन 3/14-49।

धार्मिक लोगों के लिए भी प्रकृति के नियम समान हैं। किसी के भी हाथ में चावल है तो वह चावल ही रहेगा और पत्थर है तो वह पत्थर ही रहेगा। यह अलग बात है कि हाथ की सफाई, बात की सफाई, दवाई, वस्तु की बनावट आदि षड्यंत्र अपनाकर छल-कपट से कोई चमत्कार-जैसा दिखा दे, परन्तु वह चमत्कार नहीं है। वाचा-सिद्धि का ढोंग करने वाले तथा चमत्कार का झांसा देने वाले धूर्त हैं और इसमें फंसने वाले मूर्ख हैं।

"मान बड़ाई ले रहे, हिन्दू तुरुक जाती।" हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियां अपनी-अपनी मान-बड़ाई की डीगें हांक रही हैं कि हम बड़ी हम बड़ी। यहां भला दो ढंग से कहां है? हिन्दू-मुसलमान आदि नाम रखकर उसके साथ एक गहरी मनोभावना बना लेते हैं, इसलिए वे एक-दूसरे से अलग तथा अपने आप को श्रेष्ठ और दूसरे को तुच्छ मानने की भूल करने लगते हैं।

"बात ब्योंते असमान की, मुद्दति नियरानी। बहुत खुदी दिल राखते, बूड़े बिनु पानी।" वे बात तो आसमान की ब्योंतते हैं, परन्तु अपने जीवन को नहीं समझ पाते और इसी में जीवन का अंत आ जाता है। लोग अपने आप के प्रति बड़ा अहंकार रखते हैं और बिना पानी बूड़ते हैं। उक्त दोनों पंक्तियों में एक-एक मुहावरा है—'आसमान की बातें ब्योंतना' तथा 'बिना पानी बूड़ना'। कपड़ा नापकर उसको काटना तथा सिलने के लिए तैयार करना 'कपड़ा ब्योंतना' कहा जाता है। इसमें 'ब्योंतना' का मुख्य अर्थ है 'नाप लेना'। आसमान की बात ब्योंतने का अर्थ है न होने योग्य काम करने की डींग हांकना। आकाश की कोई सीमा नहीं है। इसको कोई क्या नापेगा! इसी प्रकार कोई असंभव बात को कैसे संभव कर सकेगा! साहेब कहते हैं कि लोग बातें तो आसमान की करते हैं, परन्तु धरती पर जीना नहीं जानते। इसी असंतुलन में उनके जीवन की अवधि समाप्त हो जाती है। जो अपने मन में बहुत अहंकार रखता है वह बिना पानी के बूड़ता है। 'बूड़े बिनु पानी' यह मुहावरा उन पर व्यंग्य है जो तुच्छ बातों को लेकर घिनौना कर्म कर डालते हैं। कुछ लोग ऐसे होते हैं जिन्हें अहंकार तो बहुत बड़ा होता है, परन्तु तुच्छ बातों को लेकर ऐसे कर्म करते हैं जिन्हें देख-सुनकर उन्हें बच्चे भी हंसे। हर अहंकारी की दशा यही होती है। रामायण कथानक के अनुसार रावण-जैसा महाप्रतापवान, विद्वान एवं बलवान अहंकार के कारण एक पर-स्त्री के तुच्छ मोह में पड़कर कुल-परिवार एवं सेना सहित नष्ट हुआ।

"कहहिं कबीर कासों कहौं, सकलो जग अन्धा। साँचे से भागा फिरै, झूठे का बन्दा।" सद्गुरु कहते हैं कि सच्ची बातें कही भी किससे जायें, क्योंकि संसार में अधिकतम लोग तो आंखें मूंदकर रहने वाले हैं। उनकी परंपरा में जो मान्य है उसी की पूंछ पकड़कर वे चलते हैं। उन्हें सत्य से कोई मतलब नहीं है। गलत-सही जो कुछ उन्होंने अपना मान रखा है वे उसी को छाती-पेटे लगाये रखना चाहते हैं। बल्कि वे सचाई से भागे फिरते हैं, क्योंकि वे समझते हैं कि प्रकाश के सामने पड़ते ही हमारा अंधकार समाप्त हो जायेगा। वे अंधकार में आंखें मूंदकर बहुत दिनों से जी आये हैं। अतः उन्हें अंधकार में रहना तथा आंखें बंदकर जीना पसंद है, इसलिए वे प्रकाश से दूर भागते हैं। वे सच्चाई से कतराते और झुठाई की गुलामी करते हैं। जो लोग झूठी बातें करते हैं वे उनको श्रद्धा अर्पित करते हैं, उनकी सेवा करते हैं, किन्तु सत्य निर्णयी से दूर रहते हैं।

सद्गुरु कहते हैं कि सत्य-इच्छुक! तुम इसकी चिन्ता न करना कि तुम्हारे साथ कितने लोग हैं। तुम केवल सत्य को लेना और झूठे पर विश्वास कदापि नहीं करना। अपने मन के भीतर की असत्यता तथा बाहर की असत्यता कहीं की भी असत्यता को प्रश्रय नहीं देना। असत्य रखकर करोड़ों साथी मिल जायें तो वे निरर्थक हैं, क्योंकि अंत में कोई साथ नहीं देगा, परंतु केवल एक सत्य यदि साथ में हो तो असंख्य साथियों से वह बलवान है। इसलिए सद्गुरु कबीर ने संतों एवं सज्जनों को इस शब्द में बुलाकर कहा है कि हे संतो, हे सज्जनो! सुनो, झूठे के पक्ष में नहीं पड़ना! भीतर मन तथा बाहर मन के वशीभूत लोग तुम्हें झूठी बातों में फंसाना चाहेंगे, परन्तु तुम कहीं भी नहीं फंसना। सदैव केवल सत्य में रमना। सत्य सर्वोच्च है।

❑

मृत्यु निश्चित है

सद्गुरु कबीर साहेब की एक साखी है—

आये हैं सो जायेंगे, राजा रंक फकीर।
एक सिंहासन चढ़ि चला, एक बंधा जंजीर॥

जो आया है उसे जाना होगा। राजा हो, रंक हो, चाहे फकीर हो, जाना सबको है। कोई यहां स्थिर रहने के लिए नहीं आया है। सबको जाना जरूर है, लेकिन जाने-जाने में फर्क होता है। कुछ ऐसे लोग होते हैं जो सिंहासन पर बैठकर जाते हैं और कुछ ऐसे लोग होते हैं जो जंजीरों से बंधकर जाते हैं। सिंहासन पर बैठकर जाना और जंजीरों में बंधकर जाना, दोनों में बहुत अंतर होता है। सिंहासन पर राजा-बादशाह बैठता है और जंजीरों से बंधने वाला अपराधी होता है। जो दुराचारी होता है, गलत काम करने वाला होता है उसी को ही जंजीर से बांधा जाता है।

कबीर साहेब कहते हैं जो आया है उसे जाना होगा। हमारे पूर्वज आज दुनिया में कहां हैं? इतिहास में जिन महापुरुषों के नाम पढ़ते हैं, वे आज दुनिया में कहां हैं, उनका भी शरीर चला गया। हमारा शरीर कब तक रहेगा हमें इस पर विचार करना चाहिए। हम रोज-रोज लोगों को मरते देखते हैं, लोगों के मरने का समाचार सुनते हैं, अखबारों में पढ़ते हैं परन्तु अपने लिए विचार नहीं कर पाते, लेकिन हमारे भी शरीर का नाश एक दिन होना ही है। किसी संत ने कहा है—सड़क से किसी की अर्थी को गुजरते हुए देखकर यह मत कहना कि बेचारा दुनिया से चला गया, किन्तु यह सोचना कि एक दिन मेरी भी अर्थी ऐसे ही सड़क से निकलेगी और लोग खड़े होकर तमाशा देखेंगे।

यह एक हकीकत है। इसे कोई बदल नहीं सकता। और बातों के लिए तो अनिश्चितता है। हम किसी से मिलने जा रहे हैं उस व्यक्ति से मुलाकात होगी या नहीं होगी कहा नहीं जा सकता। खेती करते हैं तो जैसी फसल चाहिए वैसी होगी या नहीं होगी कहा नहीं जा सकता। जो व्यक्ति पैदा हुआ है उसकी शादी होगी या नहीं होगी यह भी नहीं कहा जा सकता लेकिन क्या कोई कह सकता है कि जिसका जन्म हुआ है उसकी मौत नहीं होगी। मौत तो होगी ही होगी। किन्तु सब अपनी मौत को भूल जाते हैं। यदि सभी लोग अपनी मौत को याद कर लें कि एक दिन मेरे इस शरीर का नाश होना है तो किसी के द्वारा कभी कोई गलत काम, कोई पाप नहीं होगा। तब सोचेंगे कि गलत काम करके, दूसरों को धोखा देकर पाप करके जो धन मैं बटोर रहा हूं वह धन तो यहीं छूट जायेगा, मेरे साथ चलेगा नहीं। लेकिन पाप कर्म का फल भोगना पड़ेगा फिर मैं पाप क्यों करूं।

जो आदमी अपनी मौत को बराबर देखता रहता है उसके जीवन में कभी कोई पाप हो नहीं सकता। संतगण एक उदाहरण दिया करते हैं—

एक वैराग्यवान संत थे। उनका एक शिष्य था। शिष्य के मन में शंका हुआ करती थी कि मैं जवान हूं, मेरा स्वस्थ शरीर है। मुझे काम-वासना बार-बार परेशान करती रहती है और मैं काम-वासना में पड़ जाया करता हूं। गुरु जी का भी सुंदर स्वस्थ शरीर है तो क्या गुरु जी के मन में काम-वासना नहीं आती होगी। एक दिन गुरु जी से पूछ ही लिया कि गुरुजी! क्या आपको काम-वासना परेशान नहीं करती? गुरुजी प्रश्न सुनकर मुस्कुरा दिये। कहा—उत्तर मैं समय से दे दूंगा। शिष्य घर लौट गया और दो दिनों बाद आया। जैसे ही उसने प्रणाम किया गुरु जी उदास चेहरा लिये बैठ गये। उसने कहा—गुरु जी! मेरे आते ही उदास क्यों हो गये? गुरुजी ने कहा—बेटा! क्या बताऊं, ऐसी बात है कि उदास होना पड़ा। उसने कहा—कौन सी बात? बताइये तो आखिर बात क्या है? गुरुजी ने कहा—बेटा! तुम्हारे शरीर के लक्षण को देखते हुए ऐसा लगता है कि आज रात दो बजे तुम्हारी मौत हो जायेगी। यह बात सुनकर तो वह एकदम कांप गया।

किसी को गारंटीपूर्वक यह विश्वास करा दिया जाये कि आज तुम्हारी मौत हो जायेगी तो उसकी तो पूरी दुनिया ही बदल जायेगी। यह दुनिया उसे कुछ और रूप

में दिखाई पड़ने लगेगी। धरती वही रहेगी, आकाश वही रहेगा, नदी-नाले, पेड़-पहाड़, सगे-संबंधी दुनिया के लोग वही रहेंगे लेकिन जैसे पहले देखते थे उस रूप में दिखाई नहीं पड़ेगा। अब कुछ और रूप में दिखाई पड़ेगा। उसको भी कुछ और दिखाई पड़ने लगा। वह उदास हो गया, कुछ देर बैठा और घर लौट गया। घर पहुंचकर वह चुपचाप लेट गया।

शाम हो गई। पत्नी आयी और कही कि भोजन तैयार है, चलो भोजन कर लो। उसने कहा—भोजन करने की इच्छा नहीं है। और रात हुई, पत्नी आयी और छेड़खानी करने लगी तो उसने डांट दिया कि हट जाओ मेरे पास से, क्योंकि उसके मन में तो मौत सवार थी। दस बज गये हैं रात्रि के, केवल चार घण्टे और बाकी हैं। धीरे-धीरे रात के बारह बज गये। सोचा कि मरने में अब दो घण्टा बाकी है। एक बज गया, डेढ़ बज गये, अब सोचा कि आधा घण्टा बाकी है, दो बजने में अब दो मिनट बाकी है, दो मिनट में सब समाप्त। एकदम भयभीत होकर मौत का इंतजार करता रहा। दो बज गये लेकिन मौत नहीं हुई। तीन बज गये, चार बज गये मौत नहीं हुई।

फिर वह उठा, नहाया-धोया और गुरुजी के पास गया और कहा—गुरुजी! आप भी झूठ बोलते हैं। आपने तो कहा था कि आज दो बजे रात में तुम्हारी मौत हो जायेगी, लेकिन मैं तो मरा नहीं, आपने झूठ क्यों कहा?

गुरुजी ने कहा—बताओ, आज तुमको काम-वासना ने कितना परेशान किया? उसने कहा—गुरुजी, जहां मौत सामने लटक रही हो वहां कामवासना की कहां गुंजाइश है।

मौत दिखाई पड़ेगी तो क्या काम-वासना उदित होगी, क्रोध आयेगा? लोभ में पड़कर पाप करेंगे? सब भूल जाते हैं कि हमें दुनिया से जाना है। लगता है कि सब चले गये तो चले गये हमें थोड़े जाना है। बस इसी अहंकार के कारण गलत कर्मों में प्रवृत्त हो जाते हैं। अपने को सम्हाल नहीं पाते हैं और जो नहीं करना चाहिए वह कर लेते हैं।

स्वामी दयानंद सरस्वती से किसी ने पूछा था कि स्वामी जी! क्या आपको काम सताता नहीं है? तब उन्होंने कहा था कि मेरे पास इतना काम है कि काम के लिए फुर्सत ही नहीं है। जब मन निरन्तर सद्विचार में, आत्मचिंतन में, शरीर-संसार एवं भोगों की अनित्यता, क्षणभंगुरता और दुखरूपता के चिंतन में लगा रहता है वहां विकार उठने की संभावना कहां है?

लोग तो जो कुछ भी देखते हैं उनको यथार्थ मान लेते हैं और सोचते हैं कि सब ऐसे बने रहेंगे और इनका सुख मैं भोगता रहूंगा। बस गड़बड़ी यहीं होती है और यहीं से मन में विकार उठते हैं।

यदि सब अपनी मौत के बारे में ख्याल कर लें, यह सोच लें कि दुनिया से हमें जाना है तो किसी से कोई पाप नहीं होगा। सब पाप से बचे रह जायेंगे और जाना पक्का है। लेकिन हम रोज-रोज देखते हैं कि एक-एक करके लोग दुनिया छोड़कर जा रहे हैं किन्तु अपने लिए नहीं सोच पाते। इसी को तो युधिष्ठिर ने दुनिया का महान आश्चर्य कहा है। यक्ष ने पूछा था कि दुनिया का सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है? तब युधिष्ठिर ने कहा था—

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्तीह यमालयम्।
शेषाः स्थावरमिच्छन्ति किमाश्चर्यमता परम्॥

अर्थात रोज-रोज प्राणी यमलोक को जा रहे हैं लेकिन जो लोग बचे हुए हैं वे यहां सदैव रहना चाहते हैं, इससे बड़ा आश्चर्य क्या होगा।

शरीर की मौत तो होनी है। शरीर की मौत हो जाना कोई बड़ी दुर्घटना नहीं है, यह तो प्रकृति का नियम है। जो चीज बनी है उसका बिगाड़ होना ही है। कोई ऐसी चीज दुनिया में नहीं है जो बनी तो हो और बिगड़े न। शरीर बना है तो बिगड़ेगा। शरीर की मौत से भयभीत होने की कोई जरूरत नहीं है। शरीर तो एक दिन छूटेगा ही, चाहो तो और न चाहो तो। लेकिन शरीर छुटने के पहले शरीर के मोह का त्याग कर दें तो बस बेड़ा पार है। और यदि मोह का त्याग नहीं हुआ तो बार-बार जन्म-मरण के चक्र में भटकना पड़ेगा। कबीर साहेब ने कहा है—

एक न जरे जरे नौ नारी, युक्ति न काहू जानी

(बीजक, शब्द 58)

सद्गुरु कबीर कहते हैं एक नहीं जलती है, नौ नाड़ियां जलती हैं। मतलब एक वासना नहीं जलती है किन्तु नौ नाड़ियों से ग्रथित काया बार-बार जलती है। वासना को जलाने की युक्ति कोई जानता नहीं है इसलिए लोग आवागमन के चक्र में पड़े हुए हैं। शरीर का नाश तो होना ही है किन्तु कब वह घड़ी आयेगी कुछ कहा नहीं जा सकता है, सर्वथा अदृश्य है।

एक सज्जन सुबह दूध लेने के लिए गये। आधा-पौन घंटा बाद दूध लेकर आये। कुर्सी पर बैठे और सदैव के लिए बैठे रह गये। एक अध्यापक शाम को विद्यालय से घर आये। घर में प्रवेश करते ही बेटा से कहा—बेटे! प्यास लगी है, जरा पानी ले आओ। ड्राइंग रूम में कुर्सी पर बैठ गये। लड़का पानी लेने के लिए अंदर गया, जब तक पानी लाया तब तक अध्यापक महोदय विदा हो गये। एक रिटायर्ड अफसर बाजार जाने के लिए अपनी पत्नी के साथ घर से बाहर निकले। मोटर साइकिल का हैंडिल पकड़े और पकड़े ही रह गये। कौन जानता है कब किसका जाने का नंबर आ जाये। कौन श्वास जीवन का आखिरी श्वास होगा कुछ कहा नहीं जा सकता है। एक चीज याद रखें कि हमारा हर कदम हमें मौत के नजदीक ले जा रहा है और कौन कदम आखिरी कदम होगा, कुछ कहा नहीं जा सकता।

इसलिए जीवन को बहुत सम्हालकर जीने की आवश्यकता है। मन में कोई गलत चिंतन न होने पाये, इन्द्रियों से कोई गलत काम न होने पाये। हो सकता है मन में विकार आया और उसी समय शरीर छूट गया तो उस विकार के अनुसार ही अगले शरीर की प्राप्ति होगी और फिर भटकना पड़ जायेगा।

बहुत बड़े ज्ञानी हैं, बड़े महात्मा हैं, त्यागी हैं, संन्यासी हैं, भक्त हैं, धार्मिक हैं, पुजारी हैं, लेकिन भूलवश और अनादि अभ्यास असावधानी के कारण मन में विकार आ गया और उसी समय शरीर छूट गया तो फिर ज्ञान-ध्यान काम नहीं करेगा। इसीलिए अपने मन को निरंतर पवित्र बनाये रखने की आवश्यकता है। निरंतर मन को देखते रहना है कि मन में कभी कोई विकार, कोई कुचिंतन न आने पाये। और यह हमारे हाथ में, हमारे अधिकार में है। कोई किसी और पर अधिकार कर पाये या न कर पाये अपने मन पर सबका अधिकार है। सब अपने मन को वश में कर सकते हैं। जिस शरीर के प्रति बड़ी प्रियता है उस शरीर पर भी अधिकार नहीं है। कौन चाहता है कि मैं जवान से बूढ़ा होऊं। बुढ़ापा किसी को पसंद नहीं है। कोई जवान नहीं चाहता है कि मैं बूढ़ा हो जाऊं लेकिन शरीर पर अधिकार कहां है? यदि शरीर पर अधिकार रहता तो दुनिया में कोई आदमी बूढ़ा नहीं होता, लेकिन देखते-देखते जवानी विदा हो जाती है और बुढ़ापा आ जाता है। और जवानी जाती है तो लौटकर आती नहीं है, बुढ़ापा आता है तो लौटकर जाता नहीं है। जो जन्म से मृत्यु तक सदैव साथ बना रहता है वह शरीर ही अधिकार में नहीं है। कौन चाहता है कि मेरे बाल सफेद हों, आंखों से दिखाई कम पड़े, कानों से सुनाई कम पड़े, शरीर में झुर्रियां पड़ जाये, शरीर अशक्त-जर्जर हो जाये। लेकिन यह सब होता है। सबसे निकट माना गया अपने शरीर पर ही अधिकार नहीं है तो शरीर संबंधी अन्य प्राणी-पदार्थों पर कैसे अधिकार हो सकता है?

कोई किसी को वश में नहीं कर सकता, किन्तु मन को सब अपने वश में कर सकते हैं, क्योंकि मन सबका अपना है, परन्तु उसी को वश में करने के लिए कुछ सोचते नहीं हैं। इसमें कारण यह है कि एक तो राग लगा हुआ है सब तरफ और दूसरा है मन को वश में करने के लिए पूरा अभ्यास नहीं करते।

गीता में अर्जुन ने प्रश्न किया है कि मन को कैसे वश में किया जाये। अर्जुन कहते हैं—

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।

तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥ 6/34॥

हे कृष्ण! मन तो बहुत चंचल है। यह बड़े-बड़े बलवानों को भी मथ देता है। मैं मानता हूं कि मन को वश में करना उसी प्रकार कठिन है जिस प्रकार हवा को

वश में करना। तब श्रीकृष्ण ने कहा—अर्जुन! तुम्हारी बात सही है—

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥ 6/35॥

हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! अभ्यास और वैराग्य के द्वारा मन को वश में किया जा सकता है। महर्षि पतंजलि ने भी कहा है—अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः (योग दर्शन)

अभ्यास है किसी साधना को, किसी बात को बार-बार दोहराना और वैराग्य है—अनासक्ति, निर्मोहता। वैराग्य का अर्थ घर छोड़ देना नहीं है। या विशेष प्रकार के कपड़े पहन लेना नहीं है। कपड़े में, मठ में, आश्रम में वैराग्य नहीं रखा है। वैराग्य तो मन की चीज है। मन की अनासक्ति, मन की निर्मोहता वैराग्य है।

घर में ही रहें और जो जिम्मेदारी है, जो दायित्व है उसका पूरा पालन करें, लेकिन यह समझें कि इतने लोगों के बीच रहते हुए भी मैं अकेला हूं। हर जीव अकेला है। किसी जीव का किसी जीव से स्थायी संबंध है ही नहीं। बीच में मुलाकात हो गई है कुछ दिनों के लिए। यह मुलाकात कब तक बनी रहेगी, कुछ कहा नहीं जा सकता। जब तक मुलाकात है तब तक सबकी सेवा करें, सबके साथ प्रेम का, क्षमा का, सहिष्णुता का व्यवहार करें। अपने कर्तव्य में कहीं चूक न होने दें, इस बात पर ध्यान रखें, लेकिन सबको प्रेम देते हुए, सबकी सेवा करते हुए, जिम्मेदारी का पालन करते हुए यह सोचें कि मैं नितांत अकेला हूं। मौलिक रूप में मेरा साथी कोई नहीं है। तो आपका व्यवहार भी सुन्दर बनेगा और परमार्थ भी उज्ज्वल होगा।

परमपूज्य गुरुदेव श्री अभिलाष साहेब जी कहा करते थे कि 'प्रेम में स्वर्ग है और अनासक्ति में मोक्ष है।' आप कहेंगे कि प्रेम और अनासक्ति दोनों एक दूसरे के विरोधी हैं। प्रेम होगा तो अनासक्ति नहीं होगी और अनासक्ति होगी तो प्रेम नहीं होगा। दोनों विरोधी नहीं हैं। जो अनासक्त होगा वही सच्चा प्रेम दे पायेगा। आसक्त आदमी तो पक्षपात करेगा। घर में पिता है और उसके तीन पुत्र हैं, यदि किसी एक पुत्र पर वह आसक्त हो गया, किसी एक पुत्र पर मोह कर लिया तो पिता दो पुत्रों के साथ न्याय नहीं कर पायेगा। घर की सम्पत्ति को बराबर नहीं बांटेगा। कहीं न कहीं जरूर पक्षपात करेगा, अन्याय करेगा। यदि तीनों पुत्रों पर बराबर स्नेह हो, बराबर प्रेम हो तो जो उचित है सबको बराबर देगा।

प्रेम अलग है और मोह अलग है। प्रेम किसी एक के लिए नहीं होता। एक के लिए जो होता है वह मोह होता है। जो सबके लिए होता है वह प्रेम होता है। सबके लिए जब प्रेम होता है तब मन में समता आ जाती है और जब मोह होता है तब विषमता आ जाती है। समता जहां आयेगी वहां व्यवहार सुंदर होगा, विषमता जहां आयेगी वहां पर व्यवहार गड़बड़ हो जायेगा। जो सबके लिए प्रेम देगा वह सबसे अनासक्त भी होगा, क्योंकि कोई उसका अपना नहीं है।

व्यवहार में सबको अपना प्रेम दें, तो आपका घर स्वर्ग बन जायेगा। लेकिन सबसे अनासक्त रहें, किसी से कोई कामना, कोई चाहना न रखें। समझें कि मैं अकेला हूं। किससे मोह करके मैं अपने को फंसाऊं। दूसरा आपके लिए कुछ कर देता है तो उसे धन्यवाद दे दें, नहीं करता है तो भी धन्यवाद दे दें। आपका लड़का आपकी सेवा करता है, बात मानता है तो धन्यवाद दें, सेवा नहीं करता है, बात नहीं मानता है तो भी धन्यवाद दें, शिकायत न करें। शिकायत करेंगे तो अपना ही मन असंतुष्ट रहेगा, जलेगा और लड़का दूर होता चला जायेगा।

यह भी समझ लें कि गृहस्थी में बच्चे पैदा हो गये तो जिम्मेदारी बढ़ गयी। उन्हें पालें-पोषें, पढ़ायें-लिखायें, योग्य बनायें, जो करना हो वह सब करें, लेकिन लड़के से सुख मिल जायेगा, इस भूल में न रहें। लड़के से सुख नहीं मिलता है। सभी लड़के वाले समझ सकते हैं कि उन्हें लड़के से कितना सुख मिल रहा है! लड़का कुछ बात मान लेगा, कुछ सेवा कर देगा, किन्तु सुख नहीं दे पायेगा। सुख तो मिलता है अपनी अच्छी समझ से और अपने सद्कर्मों से। यदि अपने भाग्य में दुख लिखा हुआ है तो एक नहीं कई बेटे हो जायें तो भी सुख नहीं मिलेगा।

महाराज दशरथ के चार पुत्र थे और चारों बहुत योग्य थे। योग्य नहीं सुयोग्य थे। राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न जैसे विनम्र, आज्ञाकारी, सेवापरायण पुत्र जिस पिता के हों वह पिता महा सौभाग्यशाली है। लेकिन उन चारों बेटे ने मिलकर अपने पिता को कौन-सा सुख दिया। राम और लक्ष्मण चले गये जंगल और भरत-शत्रुघ्न ननिहाल में हैं, राजा दशरथ तड़प-तड़प कर मर गये। अंतिम समय में एक भी पुत्र नहीं सामने रहा। भाग्य में ही दुख भोगना बदा हुआ है तो क्या करेंगे आप?

कहते हैं कि भगवान जब चाहेगा तब हमारा दुख दूर कर देगा। कहानी के अनुसार भगवान स्वयं राजा दशरथ के यहां पुत्र रूप में आये थे लेकिन अपने पिता के दुख को दूर नहीं कर पाये। आपके कर्म ही खोटे हैं तो भगवान क्या करेगा। इसलिए भगवान को न पुकारे, कर्मों को सुधारें। कर्म सुधार ही भगवान की पूजा है, भगवान की सेवा है।

मूल बात है 'आये हैं सो जायेंगे, राजा रंक फकीर। एक सिंहासन चढ़ि चला, एक बंधा जंजीर।' साहेब कहते हैं जो आया है उसे जाना होगा। राजा हो, रंक हो, फकीर हो सबको जाना है। प्रकृति का नियम सबके लिए बराबर होता है। प्रकृति किसी के साथ पक्षपात नहीं करती क्योंकि प्रकृति अचेतन है। चेतन जो व्यक्ति होता है वह पक्षपात कर सकता है लेकिन प्रकृति किसी के साथ पक्षपात नहीं करती। उसका तो अपना नियम है।

दुराचारी आदमी आग में हाथ डालेगा तो उसका हाथ जलेगा, सामान्य आदमी आग में हाथ डालेगा तो उसका हाथ जलेगा और सदाचारी ज्ञानी महात्मा भी आग में हाथ डालेगा तो उसका भी हाथ जलेगा। आग का नियम ही है जलाना। वह यह नहीं देखती है कि जो आदमी आया है यह सदाचारी है कि दुराचारी है।

इसलिए प्रकृति के नियमों को समझें और समझकर नियमानुसार जीवन बनायें। यह जो प्रकृति का नियम है यही विश्वव्यापी ईश्वर है। कहते हैं कि ईश्वर कण-कण में व्याप्त है। वह ईश्वर कौन है? यह नियम रूपी ईश्वर ही कण-कण में व्याप्त है। कोई ऐसा कण नहीं है, कोई ऐसी जगह नहीं है जहां नियम व्याप्त न हो। सर्वव्यापी नियम ही सर्वव्यापी ईश्वर है। प्रकृति के नियमों को समझें, समाज के नियमों को समझें, राष्ट्र के नियमों को समझें, अपने परिवार के नियमों को समझें, अपने पेट के नियमों को समझें और उनका आचरण करें।

आपका पेट, आपकी आंत चार रोटी पचा सकती है। लोभ में या स्वाद में पड़कर आपने छह रोटियां खा लीं तो प्रकृति दण्ड देगी ही देगी। चार-छह घण्टे परेशान रहना ही पड़ेगा। छह रोटी खाकर चाहे राम का नाम जपें चाहे खुदा का नाम जपें, चाहे गंगा का जल पीयें चाहे गुरु का चरणोदक पीयें, पेट ठीक नहीं होने वाला है। समय आने पर ही ठीक होगा। यदि तकलीफ नहीं पाना चाहते हैं तो चार ही रोटी खायें। पेट का नियम ही है वह चार रोटी ही पचायेगा। इसलिए इस नियम को समझें और इस नियम को समझना ही ईश्वर की आराधना है, ईश्वर की पूजा है।

'आये हैं सो जायेंगे, राजा रंक फकीर' सबको जाना है चाहे राजा हो, रंक हो या फकीर हो। लेकिन जाने-जाने में अंतर है? 'एक सिंहासन चढ़ि चला, एक बंधा जंजीर' एक सिंहासन पर बैठकर जाता है और एक जंजीर में बंधकर जाता है। यह सिंहासन और जंजीर क्या है? क्या किसी के लिए ऊपर आकाश से कोई सिंहासन आता है और क्या किसी के लिए यमदूत आते हैं मोटे-मोटे जंजीर लेकर बांधने के लिए। कहानियों में पढ़ते हैं और कहानियां बातों को समझाने के लिए होती हैं। सामान्य बुद्धि के जो लोग होते हैं उनको समझाने के लिए ये सब कहानियां बनायी गयी हैं कि किसी प्रकार से आदमी धर्म-मार्ग में लगे। अन्यथा ऊपर आकाश से न कोई विमान या सिंहासन आता है न कोई जंजीर आती है।

सिंहासन है शुभ कर्मों के, पुण्य कर्मों के संस्कार। जंजीर है गलत कर्मों के संस्कार। जिसने अपने पुण्य एवं शुभ कर्म द्वारा अपने संस्कार को अच्छा बना लिया है उसका मन हर समय हलका, प्रसन्न एवं शांत रहेगा।

और यदि गलत काम किया है, पाप कर्म किया है तो मन कचोटता ही रहेगा, भारी-बोझिल बना रहेगा, भयभीत-अशांत बना रहेगा। यह अशांत, भयभीत, दुखी और पीड़ित रहना ही जंजीर है।

पुण्य कर्मों के संस्कार सिंहासन है। पाप कर्मों के संस्कार जंजीर है। कहा जा सकता है कि यह पाप और पुण्य क्या है? पाप-पुण्य को बहुत लोग मान्यता मात्र कहते हैं। क्योंकि एक कर्म जिसे एक आदमी पाप मानता है उसे ही दूसरा आदमी पुण्य मानता है। धर्मग्रंथों को देखते हैं तो पाप-पुण्य की परिभाषा अलग-अलग ढंग से दी गयी है और उसमें बड़ा विवाद है।

पाप-पुण्य को जानने के लिए धर्मग्रंथों को पढ़ने की और महापुरुषों के प्रमाण देने की जरूरत नहीं है। पाप-पुण्य को जानने के लिए अपने दिल को पढ़ने की जरूरत है। दुनिया की सबसे बड़ी किताब आदमी का दिल है। सहज परिभाषा है पाप और पुण्य की। जिस काम को करने के पहले, करते समय और करने के बाद मन भयभीत और अशांत हो और दूसरों को तकलीफ हो वे सारे कर्म पाप हैं और जिन कर्मों को करते समय और करने के बाद भी मन प्रसन्न हो और दूसरों की सेवा-सहायता हो, दूसरों को भी प्रसन्नता मिले वे कर्म पुण्य हैं। बस इतना-सी परिभाषा है पाप और पुण्य की। इससे किसी मत, मजहब और संप्रदाय से कोई मतलब नहीं है। जिन कर्मों से भय एवं दुख हो और दूसरों को पीड़ा मिले वे पाप कर्म हैं। जिन कर्मों से मन में प्रसन्नता एवं आनंद हो और दूसरों की सेवा मिले वे पुण्य कर्म हैं।

स्वयं सोचना पड़ेगा कि ऐसे कौन-कौन से कर्म हैं जिन्हें करने के बाद मुझे प्रसन्नता मिलती है, साथ-साथ दूसरों को भी आनंद मिलता है। और ऐसे कौन-कौन से कर्म हैं जिन्हें कर लेने के पश्चात मेरे मन में भय होता है और दूसरों को तकलीफ होती है।

ऐसे जो कर्म हैं जिन्हें करते समय भी और करने के बाद भी मन अशांत हो, पीड़ित हो, दूसरों को तकलीफ हो ऐसे कर्मों से अपने को बचायें अन्यथा जीवन भर दुख भोगते रह जायेंगे और यही जंजीर है। जिन कर्मों को करने से मन प्रसन्न हो, आनंदित हो और दूसरों को सेवा-सहायता मिले, आनंद मिले ऐसे कर्मों को अधिक से अधिक करते चलें। सिंहासन अपने आप तैयार होता चला जायेगा क्योंकि संस्कार शुभ रहेंगे।

सद्गुरु कबीर इस साखी में बताते हैं कि यहां तुम स्थिर रहने के लिए नहीं आये हो। जीवन थोड़े दिनों के लिए मिला हुआ है। कब खत्म हो जायेगा कुछ कहा नहीं जा सकता। इसलिए बहुत सम्हाल करके जीवन व्यतीत करें। अपने मन-वाणी-कर्म को पवित्र रखें, मन में कोई विकार न आने दें। थोड़े दिनों की जिंदगी है। इस जिंदगी में किसी को कोई तकलीफ न दें और आत्म-सुधार का काम करें।

—धर्मेन्द्र दास

भूल गये

रचयिता—श्रीमती मीना जैन

जग भ्रमण का स्वप्न सजाया हमने
आत्म रमण की बात सर्वदा भूल गये
बाह्य जगत से जोड़ा गहरा नाता
अन्तः जगत से जुड़ना हम भूल गये

खोजते रहे आनंद दुनिया के मेले में
उलझते रहे नित-नित नये झमेले में
परिस्थितियों का करते रहे अवलोकन
स्वस्थिति में रमना है, यह भूल गये

न छूटे राग-द्वेष और विषय-विकार
न छूटी मोहासक्ति, न मिथ्या हंकार
मिथ्या को मान लिया सच हमने!
उत्तम सत्य के गूढ़ तथ्य को भूल गये

चले स्वयं को श्रेष्ठ सिद्ध करने
प्रशंसा - प्रसिद्धि से झोली भरने
कंचन - वैभव से सुख न मिले पर
ज्ञान संपदा संचय करना भूल गये

निज आत्म तत्व का न अनुमान रहा
मैं स्वयं ही चेतनशील न भान रहा
सिमटना है निजात्मा के आंगन में
स्वयं की पहचान जानना भूल गये

भ्रामक ही नहीं घातक भी हो सकती है किसी भी प्रकार की भविष्यवाणी

लेखक—श्री सीताराम गुप्ता

प्रायः अधिकांश व्यक्ति अपने भविष्य के विषय में जानने को बहुत अधिक उत्सुक रहते हैं। भविष्य के विषय में जानने की अनेक पद्धतियां भी हमने विकसित कर रखी हैं। लेकिन क्या वास्तव में भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं के विषय में सही-सही बताया जा सकता है? संभवतः नहीं। यदि भविष्य के विषय में जानना संभव होता तो हम आने वाली बीमारियों के बारे में जानकर उनके आने से पहले ही उनका उपचार खोज लेते अथवा कर लेते। इससे हम न केवल अनेक दुर्घटनाओं से बच जाते अपितु अपराधों को रोकने में भी सफल हो जाते। साथ ही अपराधियों के विषय में जानकारी प्राप्त करके उन्हें उचित दंड देना भी संभव हो पाता। यदि हम विवेकपूर्वक विचार करें तो यही पाते हैं कि भविष्य में क्या होगा यह बताने की कोई विज्ञानसम्मत सटीक पद्धति अथवा विधि है ही नहीं। और यदि यह संभव है तो भी इससे लाभ नहीं हानियां ही होने की संभावना बढ़ जाती है।

किसी के बताए अनुसार घटित हो जाना एक संयोग मात्र है। इस संदर्भ में एक कहानी याद आ रही है। एक चरवाहा था। वह बहुत समझदार था। वर्तमान घटनाक्रम को ठीक से समझकर उसके परिणाम के बारे में पहले ही बता देता था। लोग उससे इतने अधिक प्रभावित थे कि वे उसे पक्का भविष्यवक्ता मानने लगे। उसके भविष्यज्ञान की चर्चा दूर-दूर तक फैल गई। बात राजा के कानों तक पहुंचने में देर नहीं लगी। राजा ने चरवाहे को तलब किया और उसकी परीक्षा लेने का मन बना लिया। राजा ने अपनी मुट्ठी में एक टिड्डा बंद कर लिया और चरवाहे से पूछा कि बता मेरी मुट्ठी में क्या है। ठीक-ठीक जवाब देगा तो इनाम पायेगा वरना मौत के घाट उतार दिया जायेगा। चरवाहा बेचारा कैसे बताए कि राजा की मुट्ठी में क्या है? किसी चीज़ को बिना देखे हम कैसे बता सकते हैं कि वह क्या है? चरवाहा डर के मारे थर-थर कांपने लगा।

संयोग से चरवाहे का नाम भी टिड्डा था। उसने घटनाक्रम को ठीक से समझकर अनुमान लगाया कि अब जान बचना मुश्किल है और राजा से कहा, "राजन! आपकी मुट्ठी में बस टिड्डे की नन्ही सी जान है और कुछ नहीं।" चरवाहे ने तो बस इतना ही कहा था कि राजा की मुट्ठी में टिड्डे नामक उस चरवाहे की नन्ही सी जान है लेकिन राजा ने समझा कि चरवाहे ने सही भविष्यवाणी की है और उसने उस चरवाहे को अपने राज्य का प्रमुख ज्योतिषी नियुक्त कर दिया। कई बार ऐसे संयोग सही होने के कारण ही लोग इन तथाकथित भविष्यवक्ताओं पर विश्वास करने लगते हैं और उनके चंगुल में फंस जाते हैं। एक उदाहरण से इस तथ्य को समझने का प्रयास करते हैं। कुछ लोग बच्चा पैदा होने से पहले यह बताने का कार्य करते हैं कि लड़का होगा या लड़की। साथ ही वे लड़का होने का उपाय भी बताते हैं। वैसे यह दोनों ही बातें कानून की दृष्टि से अपराध हैं।

इस तरह भविष्य बताना ग़ैरकानूनी भी है और यह सब करना और करवाना दंडनीय अपराध की श्रेणी में आते हैं लेकिन लोग कब मानते हैं? अब यदि वे सबके लड़का होने की भविष्यवाणी कर देते हैं तो भी उनकी लगभग पचास प्रतिशत भविष्यवाणी तो ठीक ही बैठेगी क्योंकि यह स्वाभाविक है। अब जिन परिवारों में लड़का पैदा होगा वे उस भविष्यवक्ता पर अनायास ही विश्वास करने लगेंगे लेकिन इस प्रकार की घटनाओं अथवा संयोगों पर विश्वास करना अंधविश्वास के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं। यह बिलकुल वैसा ही है जैसे परीक्षा में बहुविकल्पात्मक प्रश्नों के उत्तर देने के लिए केवल पहले, दूसरे, तीसरे अथवा चौथे विकल्प पर निशान लगा देना। इस प्रकार के प्रयास में बिना जानकारी के

अथवा बुद्धि का प्रयोग किये बिना भी काफी उत्तर ठीक हो जाते हैं और कई बार बहुत अच्छे अंक भी मिल जाते हैं। लेकिन क्या इसे सही ठहराया जा सकता है?

विवाह से पूर्व कुछ लोग लड़के और लड़की की जन्मकुंडलियों को मिलवा कर देखते हैं और अपेक्षित संख्या में दोनों के गुण मिल जाने पर ही विवाह के लिए तैयार होते हैं। लेकिन वास्तविकता यह है कि कई बार लड़के और लड़की के पर्याप्त गुण मिल जाने के उपरांत भी विवाह सफल नहीं हो पाता। अब इससे क्या सिद्ध होता है? यही न कि कुंडली-मिलान का कोई औचित्य नहीं। एक सज्जन का तो यहां तक कहना है कि यदि जन्मकुंडलियों का मिलान करने के बाद विवाह सफल नहीं होता है तो जन्मकुंडलियों का मिलान करने वाले व्यक्ति को दोषी मानकर उसे दंड दिया जाना चाहिए। बात बिलकुल पते की है लेकिन इस पद्धति की कमियां छिपाने के लिए कोई न कोई दूसरा बहाना ढूंढ़ लिया जाता है। गलत बात को सही और सही बात को गलत सिद्ध करने के लिए हमारे पास कुतर्कों की कमी नहीं होती।

वास्तविकता यह है कि कई बार जन्मकुंडलियों का सही मिलान करने के चक्कर में लोग अच्छे रिश्तों को नज़रअंदाज़ कर देते हैं और गलत जगह फंस जाते हैं, कई बार जिसके बड़े भयंकर परिणाम होते हैं। भविष्य बताना केवल लोगों को बरगलाना व बेवकूफ बनाने का उपक्रम है और इसके परिणाम भी बहुत नुकसानदायक होते हैं। कोई विद्यार्थी पास होगा या फेल होगा यह कैसे बताया जा सकता है? यदि वह परिश्रम करेगा तो अवश्य पास होगा और यदि परिश्रम नहीं करेगा तो उसके पास होने की संभावना भी कम हो जायेगी। लेकिन यदि कोई भविष्यवक्ता इस प्रकार की पास या फेल होने की भविष्यवाणी करता है तो इसके दुष्परिणाम भी कम नहीं होते। यदि किसी अच्छे विद्यार्थी के विषय में भविष्यवाणी कर दी जाये कि वह पास होगा या प्रथम स्थान प्राप्त करेगा तो संभव है कि इस भविष्यवाणी के पश्चात वह विद्यार्थी परिश्रम करना ही छोड़ दे अथवा कम परिश्रम करे और पास होने पर भी अच्छे अंक प्राप्त न कर सके।

इसके विपरीत परिस्थितियों में भी कुछ ऐसा ही होने की संभावना बढ़ जायेगी इसमें संदेह नहीं। यदि किसी कमज़ोर विद्यार्थी के विषय में भविष्यवाणी कर दी जाये कि वह पास नहीं होगा तो इससे वह पूरी तरह से निराश हो जायेगा और वह पहले जितना परिश्रम करता था उतना परिश्रम करना भी छोड़ देगा और सचमुच फेल हो जायेगा जबकि वास्तविकता यह है कि परिश्रम करने के लिए प्रोत्साहित करके ऐसे विद्यार्थियों को भी सफलता के मार्ग पर अग्रसर किया जा सकता है। कई व्यक्ति इन भविष्यवक्ताओं के चक्कर में पड़कर सही निर्णय लेने की क्षमता ही खो बैठते हैं। कई लोग इन तथाकथित भविष्यवक्ताओं से पूछे बिना कोई काम नहीं करते और उनके चक्कर में पड़कर काम करना ही छोड़ देते हैं और इस तरह से कई बार अच्छे अवसर भी उनके हाथ से निकल जाते हैं। इस प्रकार से स्पष्ट हो जाता है कि भविष्य के विषय में बताना न केवल एक कपोलकल्पित विद्या है अपितु इसका दुष्प्रभाव भी कम नहीं पड़ता।

यदि हमें पता चल जाये कि अमुक दिन परिवार के किसी सदस्य की मृत्यु हो जायेगी तो उससे क्या होगा? वैसे तो यह बताना संभव ही नहीं लेकिन यदि पता लग भी जाये तो हम उसकी मृत्यु से पहले ही बहुत दुखी हो जायेंगे। यदि हमें अपनी मृत्यु के समय के विषय में सही-सही ज्ञात हो जाये तो हम उसी क्षण से जीवन के प्रति उदासीन हो जायेंगे जो किसी भी तरह से उचित नहीं कहा जा सकता। इसलिए हमें इस प्रकार की निरर्थक बातों अथवा अज्ञात भविष्य को जानने की आवश्यकता बिलकुल भी नहीं होती। हमें भविष्य के लिए सही योजना तो बनानी चाहिए लेकिन अनिश्चित भविष्य की चिंता बिलकुल नहीं करनी चाहिए। यदि हमने अपना वर्तमान संवार लिया तो हमारा भविष्य तो अपने आप ही संवर जायेगा। कुछ चालाक क़िस्म के लोग दूसरे लोगों को बेवकूफ बनाकर पैसे ऐंठने के लिए इस प्रकार की विद्या का प्रचार-प्रसार करने में लगे रहते हैं। हमें हर हाल में सकारात्मक वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास कर अंधविश्वास और पाखण्ड से दूर रहना चाहिए अन्यथा हमारा पढ़ाई-लिखाई करना ही बेकार है।

❑

शह भी आपकी, सफलता भी आपकी

लेखक—श्री चन्द्रप्रभ जी महाराज

पृथ्वी-ग्रह पर किसी का भी जन्म निरुद्देश्य नहीं होता। प्रत्येक के जन्म की अहमियत एवं सार्थकता है। हमारा जीवन कीड़े-मकोड़ों की तरह अर्थहीन नहीं है। हमारा जन्म और जीवन दोनों उद्देश्ययुक्त हैं। जीवन के प्रति उद्देश्यपूर्ण और सकारात्मक दृष्टि अपनाने पर व्यक्ति अपने प्रत्येक दिन को सार्थक और धन्य करने के लिए प्रयत्नशील होता है।

व्यक्ति की मानसिकता के अनुसार ही जीवन और जीवन जीने के मार्ग निर्धारित होते हैं। मानसिकता विचारों को प्रभावित करती है और विचार ही व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। व्यक्तित्व निर्माण ही जीवन का धन है। बेहतर विचारों से ही बेहतर मानसिकता और बेहतर व्यक्तित्व निर्मित होते हैं। यह ज़रूरी है कि हम सभी अपनी मानसिक शक्ति को पहचानें। असाधारण व्यक्ति अपनी मानसिक शक्ति और आध्यात्मिक शक्ति का प्रयोग करके ही असाधारण बनते हैं। शारीरिक कमज़ोरी तो चल जायेगी, लेकिन मानसिक कमज़ोरी जीवन में कामयाबी के पथ पर न पहुंचा सकेगी।

कमज़ोर शरीर और मज़बूत मन तो चल जायेगा, लेकिन कमजोर मन और बलिष्ठ शरीर किसी काम का न रहेगा। जीवन के विकास के रास्ते शरीर से नहीं, मन से तय होते हैं। कसरती शरीर वाले देखें कि शरीर को मज़बूत करने के साथ ही क्या वे मन को भी मज़बूत बना रहे हैं? जीवन में कामयाबी के लिए चेहरे की सुन्दरता तो 15 प्रतिशत उपयोगी है, जबकि मज़बूत मन तो 85 प्रतिशत कारगर हुआ करता है। मन की मज़बूती से तो इंसान बड़े-से-बड़े रोग को, बड़ी-से-बड़ी बाधा को, अपाहिज हो चुकी ज़िंदगी को भी जीत सकता है।

मुझे याद है, एक युवती जिसकी उम्र मात्र उन्नीस वर्ष थी, तब उसकी मां की मृत्यु हो गई और छः माह बाद ही उसके पिता भी चल बसे। उसके चाचा-चाची ने उसकी शादी की और डेढ़ वर्ष बाद ही उसका पति एक बेटी देकर दुर्घटना में मारा गया। ससुराल वालों ने उसे मनहूस कहकर उसका तिरस्कार किया और उसे घर से बाहर निकाल दिया। उस युवा स्त्री ने स्वयं जीने के लिए तथा बच्ची के पालन-पोषण के लिए प्राइवेट स्कूल में चपरासी की नौकरी स्वीकार कर ली। आजीविका कमाने के साथ ही विकट परिस्थितियों में उसने अपनी पढ़ाई भी शुरू की। उसने इंटर से आगे की भी पढ़ाई की। बी.ए. किया तीन साल में और उसे टीचर की नौकरी मिल गई। उसने पढ़ाई जारी रखी और एम.ए. किया। हाई स्कूल में उसकी पदोन्नति हो गई। धीरे-धीरे उसने पी.एच.डी. भी कर ली और कॉलेज में लेक्चरार हो गई। उस महिला का पुनर्विवाह भी हो गया। आज उसके दो बच्चे हैं। कल्पना कीजिये कि अगर वह अपने को निराश कर लेती तो शायद आत्महत्या ही करती। मन को मज़बूत बनाकर, आत्मविश्वास के सहारे आज वह महिला सम्मानपूर्वक जीवन जी रही है।

कन्या का जन्म लेना कोई अभिशाप नहीं है और न ही स्त्रीजाति इससे कमज़ोर होती है। अपाहिज और विकलांग भी अपने मन को अपाहिज और विकलांग न होने दें। जीवन में महान् लोगों को आदर्श बनाएं और जीवन में कुछ-न-कुछ कर दिखाने का ज़ज़्बा संजोकर रखें। अपनी ग़रीबी का अफ़सोस मत कीजिए। पांव में जूते नहीं हैं तो मन छोटा मत कीजिए क्योंकि दुनिया में हज़ारों लोग ऐसे हैं जिनके पांव ही नहीं हैं। आज यदि आपके पास खाने को हरी सब्जी नहीं थी, तो इसका गम मत कीजिए, क्योंकि दुनिया में ऐसे भी लोग हैं, जिन्हें आज खाने को सूखी रोटी भी नसीब न हुई हो। आपकी स्थिति उनसे तो बेहतर है। मन को छोटा नहीं, विश्वास भरा बनाइए। अपनी हर सांस को आशा और विश्वास से लीजिए।

प्रकृति ने हमें कुछ करने के लिए जन्म दिया है, इसलिए अपने मन को कभी कमजोर और अपाहिज न होने दीजिए। हैवी वेट उठाने वाले दो पहलवानों में एक हार जाता है और दूसरा जीत जाता है। क्या कभी आपने

इसका कारण सोचा है? दोनों अपनी कला में माहिर होते हैं, दोनों का शरीर बलिष्ठ होता है फिर भी जीत किसी एक को ही मिलती है। जीतता वह है जिसके मन में जीतने का जज़्बा होता है। अपने शरीर के बलवान होने का जिसे सिर्फ़ अहसास होता है वह मन की मज़बूती के बग़ैर हार जाता है। आज हमारे सामने शारीरिक और सामाजिक समस्याएं उतनी नहीं हैं जितनी कि मानसिक समस्याएं हैं क्योंकि मनुष्य मन से खिन्न, निराश और नपुंसक है।

मैं ऐसे लोगों को जानता हूं जो भले ही अपाहिज और विकलांग रहे हों, पर उन्होंने जीवन के विकास के सर्वोच्च शिखरों को छूआ है। याद कीजिए उस अंधी, गूंगी और बहरी महिला को जिसने कन्या के रूप में जन्म लिया और जो मात्र दो-ढाई वर्ष की उम्र में निमोनिया से पीड़ित होकर अपनी वाणी, श्रवण-शक्ति और नेत्र ज्योति गंवा बैठी। क्या आप ऐसी लड़की का कुछ भविष्य देख सकते हैं? लेकिन सलीवान जैसी शिक्षिका के मिलने के कारण वह अंधी, गूंगी, बहरी लड़की विकास के ऐसे द्वार खोलती है कि आज हम उसे श्रद्धा से याद करते हैं और उसकी लिखी हुई पुस्तकों का अध्ययन-अध्यापन करते हैं। वह आदरणीय महिला थी हेलन केलर, जिसने जन्म से जीवन का कोई स्वाद नहीं चखा किंतु उसने ऐसी अद्‌भुत पुस्तकों की रचना की जो महान् चिंतकों और दार्शनिकों के लिए भी प्रेरणास्तंभ हैं।

अपने ही देश के एक संगीतकार नेत्रहीन हैं, लेकिन जिनके संगीत ने दुनिया भर में धूम मचा दी है। उनके संगीत से सजी फिल्मों और टी.वी. धारावाहिकों की सर्वत्र चर्चा होती है। वे हैं रवीन्द्र जैन जिन्होंने दुनिया को बता ही दिया कि अभावों में पलकर, नेत्रहीन होकर भी जीवन की ऊंचाइयों का स्पर्श किया जा सकता है। जो अपने जीवन में प्रबल पराक्रम और पुरुषार्थ करता है वह नेत्रहीन होकर भी महान् संगीतकार बन सकता है। अभिनेत्री सुधा चन्द्रन का नाम तो आपने सुना ही है। उसके दोनों पांव नहीं हैं फिर भी वह कुशल नृत्यांगना है। दोनों पांव कट जाने के बावजूद भी उसने हिम्मत नहीं हारी और कृत्रिम पांवों से जयपुर फुट के सहारे नृत्य सीखा और अपने आपको स्थापित किया। नृत्य सीखते समय उसके घुटने छिल-छिल जाते थे, खून बहने लगता था, लेकिन असह्य दर्द के बावजूद उसने नृत्य सीखा और जयपुर के रवीन्द्र मंच पर ही ऐसी पहली बेहतरीन प्रस्तुति दी कि कोई जान भी न पाया कि उसके पैर कृत्रिम हैं। भरत-नाट्यम प्रस्तुत करके उसने बता दिया कि मज़बूत मन के साथ यदि व्यक्ति कोई भी काम करना चाहे तो उसे कामयाबी ज़रूर हासिल हो सकती है।

एक सज्जन और हैं जिनके दोनों हाथ कट चुके थे। ऐसे जवान अपंग की परिवार में क्या हालत होती है, यह आप समझ सकते हैं। अपमान, तिरस्कार और निराशा से भरा हुआ वह युवक आत्महत्या के इरादे से ट्रेन की पटरियों पर जाकर लेट गया। ट्रेन आने में समय रहा होगा कि उसके मन में विचार चलने लगे। उसकी आत्मा ने उसे झकझोरा कि उसका जन्म क्या यूं ही मर जाने के लिए, आत्महत्या करने के लिए हुआ है? उसके दोनों हाथ नहीं हैं तो क्या हुआ, उसके पांव तो सलामत हैं! इन्हीं पांवों के बल पर वह फिर उठ कर खड़ा हो सकता है। उसने संकल्प किया और चल पड़ा। रास्ते में एक ग्वाला मिला जो दूध बेचने जा रहा था। उसने विनती की कि वह उसे चार किलो दूध उधार दे दे, वह बेचेगा। ग्वाले ने आश्चर्य से कहा, 'पर कैसे?' युवक ने कहा, 'हाथ नहीं हैं तो क्या हुआ, कंधे तो हैं। दोनों कंधों पर दो-दो किलो की थैलियां लटका दो।' ग्वाले ने उसका आत्मविश्वास देखकर उसकी सहायता की और दोनों कंधों पर दो थैलियां टांग दीं। युवक चल पड़ा, दूध बेच-बेचकर उसने भैंस ख़रीद ली। धीरे-धीरे उसका व्यवसाय बढ़ने लगा और अब वह एक डेयरी का मालिक है और आठ-दस लोग उसके काम में हाथ बंटाते हैं।

हाल ही में एक पिक्चर रिलीज़ हुई है : ब्लैक। भाई श्री संजय जी, लीला संभाली ने बनाई है। अद्‌भुत फिल्म है यह। मैं ऐसी सुन्दर फिल्म के लिए संजय जी का अभिनन्दन करता हूं। आज की कचरा-छाप फिल्मों में यह फिल्म एक आदर्श है। अगर मेरे हाथ में होता तो

मैं इस सुन्दर कार्य के लिए संजयजी को नोबेल पुरस्कार दिलाना पसंद करता। आप इसे ज़रूर देखें। इस फिल्म की कहानी एक अंधी, गूंगी, बहरी और मंदबुद्धि बालिका पर केन्द्रित है। उसके मां-बाप ने उसके साथ वही व्यवहार किया जो किसी विक्षिप्त व्यक्ति के साथ किया जाता है, पर मिस्टर सहाय नाम के एक टीचर ने आखिर उसे अपने कठोर अनुशासन, कठोर मेहनत और महान् लक्ष्य के साथ उसे वह स्थान दिलाया जो कि किसी भी सम्पूर्ण शिक्षित व्यक्ति को मिला करता है। जॉन नाम की वह बच्ची संसार को आखिर यही संदेश देती है जिस डिग्री को हासिल करने में आपको बीस साल लगते हैं, उसे हासिल करने में मुझे चालीस साल लगे, पर कुदरती अभावों के बावज़ूद यदि व्यक्ति विकास करना चाहे तो वह भी ऊंचाइयों को छू सकता है। लोग समझते हैं कि ब्लैक का मतलब अंधकार। पर मेरे गुरु ने मुझे बताया है कि अंधापन ब्लैकनेस नहीं है, वरन् मन की ही भावना और निष्क्रियता ही इंसान का अंधापन है। लोगों ने धरती पर ईश्वर एक ही माना है, पर मैंने धरती पर दो ईश्वर देखे हैं। एक तो वह जिसने मेरे अंधे होने के बावज़ूद मेरे पत्थर को तराशा और मुझ अंधी-बहरी-गूंगी-मंदबुद्धि बालिका को पोस्ट ग्रेजुएट होने का गौरव प्रदान किया। उस बच्ची ने कहा—यदि ईश्वर मुझसे कहे कि तुम्हें आंख मिल जाये तो तुम सबसे पहले क्या करोगी, तो मेरा ज़वाब होगा मैं अपने टीचर के रूप में आये भगवान को देखना पसंद करूंगी।

जब अपाहिज व्यक्ति अपने संकल्प के साथ आगे बढ़ सकता है तो आपके पास तो सही सलामत देह है।

कंधे-कंधे मिले हुए हैं, कदम-कदम के साथ हैं,
पेट करोड़ों भरने हैं, पर उनसे दुगुने हाथ हैं।

कुदरत की ओर से पेट तो एक ही मिला है पर हाथ तो दो हैं। यदि व्यक्ति अपने पुरुषार्थ को जगा ले तो कमजोर-से-कमजोर व्यक्ति भी अमीर बन सकता है। हमारे आस-पास ही ऐसे अनेक लोग मिल जायेंगे, जिन्होंने संघर्ष करते हुए आज वह मुकाम हासिल कर लिया है जो प्रेरणा प्रदान कर सके। मज़बूत मन का ही नाम सच्चा यौवन है। निराश, हताश, खिन्न युवा अठारह वर्ष की आयु में ही बूढ़ा हो जाता है और जो अस्सी वर्ष का है लेकिन मन उत्साह, ऊर्जा, उमंग से भरा है वह देह से बूढ़ा होकर भी युवा मन है।

जीवन के विकास का पहला द्वार ही साहस और आत्मविश्वास है। आत्मविश्वास उन्नति की पहली सीढ़ी और प्रगति का द्वार है; वह जीवन की शक्ति और भीतर का मित्र है। आत्मविश्वास से भरे व्यक्ति के लिए कुछ भी असंभव नहीं है। उसके लिए नामुमकिन कुछ भी नहीं है क्योंकि 'ना' को हटाकर, नकारात्मकता को हटाकर उसने सब कुछ मुमकिन बना लिया है। आप वृद्ध होने पर निष्क्रिय और अकर्मण्य न बनें। गीता का भी यही सार-संदेश है कि व्यक्ति स्वयं को सदा कर्त्तव्य-पथ पर सन्नद्ध रखे। भगवान् ने यही अर्जुन से कहा था कि 'तुम अपनी नपुंसकता का त्याग करो और कर्त्तव्यों के लिए खड़े हो जाओ। मैं तुम्हारे साथ हूं।' कर्त्तव्यशील व्यक्ति के साथ भगवान सदा रहते हैं। अपने आत्मविश्वास को जगाइए। जो भी व्यक्ति महान् बन पाए उनके पीछे बुनियादी कारण रहा उनका आत्मविश्वास। महज़ क़िस्मत और भाग्य का आलम्बन मत कीजिए।

आपने भगवान महावीर के वे चित्र देखे होंगे जिनमें ग्वाला उनके कानों में कीलें ठोंक रहा है या उन्हें हंटर और बेंत से पीट रहा है। जब देवराज इन्द्र ने यह प्रत्यक्ष में देखा तो उसने आकर प्रभु से विनती की, 'भगवन्, आपके साधनाकाल में अनेक कष्ट, उपसर्ग और संत्रास आएंगे, आप मुझे आज्ञा दें कि आपकी निर्विघ्न साधना के लिए मैं इन उपसर्गों से आपकी रक्षा कर सकूं।' तब भगवान ने कहा, 'वत्स, व्यक्ति अपने जीवन का विकास अपने ही बलबूते पर करता है। अगर किसी को आत्मज्ञान भी पाना है तो दूसरों के द्वारा नहीं, बल्कि अपने ही विश्वास के बल पर वह केवलज्ञान या आत्मज्ञान के शिखर छू सकता है।' महावीर इन्द्र की सहायता लेने से इन्कार कर देते हैं और अपने ही बलबूते पर साधना करते हैं। बुद्ध की प्रेरणा है, 'अप्पदीपो भव'। अपने दीप खुद बनो। दूसरों के दीये दिखने में अच्छे होते हैं, किंतु आख़िरकार तो वे ही दीपक काम आएंगे, जो आपने ख़ुद बनाए हैं, जलाए हैं।

जो अपने बलबूते पर साधना को फलीभूत नहीं कर सकते वे ही घाट-घाट भटककर और गुरुओं के पास जाकर अपना मत्था टेकते रहते हैं। राम ने रावण के विरुद्ध युद्ध का शंखनाद किया। रावण अपार शक्तियों का स्वामी था। कहते हैं कि एक बार उसने अपनी कांख में ब्रह्मा, विष्णु, महेश को दबा लिया था। कुबेर उसकी सेवा में था, ऐसे रावण को चुनौती देना क्या सामान्य बात थी? रावण के पास राक्षसों की सेना थी और राम के पास बंदरों की सेना, पर इसके बावज़ूद राम को रावण से युद्ध करना था। रीछ, भालू, बन्दरों को लेकर राम ने रावण की सोने की लंका पर चढ़ाई कर दी। ज़रा सोचिए कि वह क्या था, जिसके बलबूते पर राम रावण पर चढ़ाई कर सके? वह था आत्मविश्वास, जिसके आधार पर, जिसकी ताक़त के सहारे राम रावण पर हमला करते हैं और विजयश्री का वरण भी करते हैं।

जीत उन्हीं की होती है जिन्हें भरोसा है कि वे जीतेंगे और अन्ततः वे जीत ही जाते हैं। महज़ राम-राम जपने से नैया पार नहीं लगती, बल्कि रामायण से प्रेरित होकर आत्मविश्वास जगाने से ज़रूर नैया पार लग जाती है। ज़रा आप सोचें कि आप किस नाम, कुल, गोत्र और माता-पिता की संतान हैं और आपने ऐसा क्या काम किया है कि आपका समाज और आपके माता-पिता आप पर गर्व कर सकें?

कोलम्बस नई दुनिया की खोज के लिए निकला था। उसके सारे साथी लम्बी समुद्री यात्राओं से थक-ऊबकर वापस चले गये। वह भी छत्तीस बार यात्राएं कर चुका था, लेकिन उसने हार नहीं मानी और छत्तीसवीं बार वह भारत तो न खोज सका, लेकिन उसने अमेरिका को ज़रूर खोज निकाला। यह क्या था? केवल साहस और आत्मविश्वास तथा दृढ़ निश्चय और खोज निकालने का ज़ज्बा। वह कौन-सी ताक़त है जिसके कारण व्यक्ति समुद्र की गहराइयों में उतर जाता है? आज तो दिशासूचक यंत्र है, लेकिन उस समय समुद्री रास्ते से किसी देश को खोज निकालना ज़बरदस्त दुस्साहस का कार्य था। पियरे ने उत्तरी ध्रुव की खोज आत्म विश्वास के सहारे की थी। गैलीलियो ने झूलते लैम्प का आविष्कार आत्मविश्वास के बल पर ही किया था। आत्मविश्वास के बल पर ही मात्र सोलह वर्ष की आयु में शिवाजी ने पहला किला फतह कर लिया था। उन्नीस वर्ष की आयु में वाशिंगटन अमेरिका का सेनापति बन गया था।

जीवन की हर चीज के पीछे आत्मविश्वास बंद मुट्ठी का काम करता है। आत्मविश्वास से पहला फ़ायदा यह है कि व्यक्ति अपने लक्ष्य का निर्धारण करने में सफल होता है। दूसरा लाभ यह है कि वह अपने निर्णय स्वयं ले सकता है। तीसरा फायदा—व्यक्ति का प्रेजेंटेशन भी बेहतर होता है। चौथी बात, वह लोगों के सामने दब्बू बनकर जीने को मजबूर नहीं होता। पांचवीं बात, वह स्वाभिमान और इज्ज़त की ज़िंदगी जी जाता है।

कौन कहता है, आसमान में छेद नहीं हो सकता?
एक पत्थर तबियत से उछालो तो सही यारो!

तुमने अपनी मानसिकता, विश्वास और आध्यात्मिक शक्तियों को कमज़ोर कर डाला तो आसमान में तो क्या ज़मीन पर कुल्हाड़ी चलाने से भी छेद नहीं होने वाला। यदि कोई महावीर या बुद्ध, कृष्ण या कबीर, गांधी या नेल्सन, बिल क्लिंटन या बिल गेट्स बनते हैं तो वे हाथ पर हाथ रखकर बैठने से नहीं बनते बल्कि पुरुषार्थ और आत्मविश्वास के बल पर बनते हैं। विद्युत बल्ब के आविष्कारक थॉमस अल्वा एडीसन लगातार सोलह वर्षों तक असफल होते रहे। उसके साथ कार्यरत वैज्ञानिक उसका हाथ छोड़कर चले गये । पत्नी ने भी कह दिया कि 'पागल हो गये हो। न जाने कौन सा भूत सवार है कि सोलह सालों से प्रयत्न कर रहे हो फिर भी कुछ हासिल नहीं हुआ।' तब भी एडीसन निराश नहीं हुआ। उसने अपनी कोशिशें जारी रखीं और जब वह सफल हुआ तो दुनिया दूधिया रोशनी से नहा उठी।

आत्मविश्वास संकट मोचक है। आत्मविश्वास धैर्य की ताक़त है। आत्मविश्वास अन्तर्मन की ऊर्जा और जीवन की चमक है। यह वह शक्ति है जिसके कारण शरीर में स्फूर्ति होती है, आनंद छा जाता है, चेहरे पर

तेज आ जाता है, फुटपाथ पर रहने वाला भी महलों तक पहुंच जाता है। आत्मविश्वास रखने वाला व्यक्ति अवसर के क्षण तुरंत पकड़कर प्रगति के पथ पर आगे बढ़ जाता है। वह उनका सही प्रयोग कर डालता है। जिस व्यक्ति के मन में आत्मविश्वास है उसको किसी और शक्ति या साधन की आवश्यकता नहीं है। हृदय सदा विश्वास से भरा होना चाहिए। प्रेरणादायक पुस्तकें आत्मविकास में बहुत सहायक होती हैं। वे आपको आपके आदर्शों और लक्ष्य की याद दिलाती रहती हैं। आप ज्यों-ज्यों स्वयं को पहचानते जायेंगे, आपकी सोई हुई शक्तियां जगती जायेंगी।

आत्मविश्वास को जगाने के लिए आप अपने हर दिन की शुरुआत स्वस्थ मन और मुस्कान के साथ करें, योग एवं प्राणायाम करें। जो सीखा है वह एक दिन के लिए नहीं है, उसे अपने जीवन में उतारें। तभी आपका पूरा दिन ऊर्जामय, उत्साहमय और उमंग से भरा होगा। प्रातःकाल उठने के साथ ही देह व मन की जकड़न दूर हो जानी चाहिए। काम चाहे थोड़ा करें, पर पूरी ऊर्जा के साथ करें। पूरी ऊर्जा के साथ अगर काम किया जायेगा तो अंबानी और आदित्य, टाटा या बिरला होना किसी एक के ही हाथ की बात नहीं है। हममें से हर व्यक्ति विकास करके उन ऊंचाइयों को छू सकता है। जिसने भी विकास किया है उसके पीछे संघर्ष और आत्मविश्वास की कहानी होती है।

मैंने कभी कलेक्टर लक्ष्मीकांत भारती की कहानी पढ़ी थी। कहते हैं उनके पिता स्वतंत्रता-सेनानी हुए हैं—कृष्णानंद भारती। महात्मा गांधी के आज़ादी-आंदोलन से प्रभावित होकर उन्होंने अपना जीवन देश के लिए समर्पित कर दिया। अपने पिता के पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए लक्ष्मीकांत भारती ने भी अपने आपको आज़ादी के समर में झोंक दिया। जब अदालत का घेराव करते हुए वे पकड़े गये तो मां को खबर लगी कि बेटा कारागृह में डाल दिया गया है तो वह रो पड़ी। वह कारागार में बेटे के पास पहुंची और बोली, 'तुम्हारे पिता ने देश के लिए प्राण उत्सर्ग कर दिए। उनकी और मेरी दोनों की यही अभिलाषा है कि तुम भी देश के काम आओ। मेरा सपना था कि तुम कलेक्टर बनोगे लेकिन तुम तो बेड़ियों में जकड़कर कारागार में आ गये हो।' पुत्र ने कहा, 'मां' ये हथकड़ियां देश की आज़ादी के लिए हैं। अंग्रेजों की हथकड़ी से मुक्त होने के लिए मैंने ये हथकड़ी पहनी हैं। मां, तुम विश्वास रखो, एक दिन तुम्हारा सपना ज़रूर पूरा होगा, तुम्हारा बेटा कलेक्टर ही बनेगा।'

वह युवक बंदीगृह से मुक्त होकर अपने अध्ययन में जुट जाता है और तत्कालीन आई.ए.एस. की डिग्री प्राप्त करता है। मां के चरणों में प्रणाम करते हुए कहता है, 'मां, मैं कलेक्टर बन गया हूं, पर पराधीन भारत का नहीं, स्वतंत्र भारत का।' वे स्वतंत्र देश के पहले कलेक्टर बने और उनकी पहली ड्यूटी मदुरै में लगी थी।

आप किसी भी उम्र के क्यों न हों, बस संकल्प करें और साहस और आत्मविश्वास से जुट जायें। सफलता एक-न-एक दिन आपके क़दमों में होगी। समय कितना भी लग जाये लेकिन आपके भीतर कुछ बनने का जज़्बा होगा, हिम्मत होगी तो आप वह बन जायेंगे। जन्म से कोई भाग्य लेकर नहीं आता, पुरुषार्थ के द्वारा भाग्य जगाया और बनाया जाता है। हम भी साहस और आत्मविश्वास के द्वारा मज़बूत मन के मालिक बन सकते हैं।

आत्मविश्वास के मालिक बनने के लिए हीनभावना दूर कीजिए। ज़रा-ज़रा सी बात पर खीझना, चिड़चिड़ाना, बिलबिला जाना, भयभीत रहना ये सब असफलता के लक्षण हैं। हमेशा प्रसन्न रहिए, खीझिए और झुंझलाइए नहीं। दिमाग़ के आले में जमे हीनभावना के जाले को निकाल फेंकिए। 'मैं गरीब आदमी, छोटी जाति का, मैं क्या कर सकता हूं, मेरी क्या औकात है', इन सब बातों को मन से हटा दीजिए, और सोचिए कि मैं क्या नहीं कर सकता? मैं सब कुछ, जो चाहूं, कर सकता हूं। मैं कुछ बनना चाहूं और न बन सकूं यह कैसे मुमकिन हो सकता है?'

(क्रमशः)

कर्मयोगी कबीर

लेखक—श्री भावसिंह हिरवानी

अन्तिम विद्रोह

सन्त कबीर जब अपने जीवन के अन्तिम पड़ाव पर पहुंच गये और उन्हें एहसास होने लगा कि अब उनके शरीरांत का समय निकट है तो उन्होंने काशी छोड़कर मगहर प्रस्थान करने की घोषणा कर दी। यह धार्मिक अन्धविश्वास के प्रति उनका अन्तिम विद्रोह था। पण्डितों ने यह महिमा फैला रखी थी कि काशी में शरीर त्यागने वालों को मोक्ष मिलता है तथा मगहर में मरनेवाला गधा योनि में जन्म लेता है।

कबीर की इस घोषणा से काशी में एक बार फिर खलबली मच गयी, बिलकुल उसी तरह जिस तरह कबीर के बाल्यकाल में समाज में व्याप्त विसंगतियों के प्रति उनका खुला विद्रोह देख मची थी। तब से लेकर आज तक गंगा में न जाने कितना पानी बहकर समुद्र में समा चुका है। तब यह काशी नगरी अपने जुलाहा-पुत्र को अपनी गोद में पाकर झूम उठी थी। हजारों वर्षों के जीवन काल में ऐसा नटखट और साहसी पुत्र उसकी कोख में कोई दूसरा पैदा नहीं हुआ था।

काशी के इस जुलाहे ने सत्य और न्याय की ऐसी ज्योति जलायी कि सब कुछ उलट-पुलट गया। कबीर की वजह से काशी का सामाजिक और धार्मिक परिदृश्य एकदम बदल गया था। यद्यपि पहले की तरह आज भी प्रातःकाल मन्दिरों में पूजा की घण्टी की आवाज सुनायी देती थी। पण्डे-पुजारी भोर के तारे निकलने से पहले ही मन्त्रोच्चार करते हुए गंगा-स्नान करके बाबा विश्वनाथ को जल चढ़ाने जाते थे। मगर तब और अब में बहुत फर्क आ गया था। पण्डे-पुजारियों के चेहरे की चमक गायब हो गयी थी। काशी की संकरी गलियों में जो दंगल और आस्था का ज्वार कबीर के बाल्यकाल में नजर आता था, अब नहीं था। लोग पूजा-पाठ की हकीकत जान चुके थे। वे गंगा-स्नान करने अब भी आते थे किन्तु पण्डे-पुजारियों से कन्नी काटकर आगे बढ़ जाते।

बेचारे पण्डों की आंखें यजमानों की राह निहारती थक जाती थीं। उनका धंधा लगभग चौपट हो चुका था। बिपत का मारा कोई श्रद्धालु पहुंचता भी तो एक साथ कई पण्डे घेरकर उससे सौदाबाजी करने लगते। कभी-कभी तो सारा दिन यूं ही गंगा की लहरों को गिनते बीत जाता था और उन्हें उदास मुंह लटकाये खाली हाथ घर लौटना पड़ता था। अब तो लोग बेखौफ कबीर के भजन गाते हुए आकर गंगा-स्नान करते और उसी तरह बेफिक्र घर लौट जाते। पहले की तरह पण्डितों में लोगों को नीच या अछूत कहकर तिरस्कृत करने की हिम्मत नहीं रह गयी थी। वे जानते थे विरोध करने का मतलब आफत मोल लेना था। खबर मिलते ही कबीर स्वयं आ खड़े होंगे और उन्हें मुंह छिपाकर भागना पड़ेगा।

वर्षों पुरानी काशी और आज की काशी में बहुत कुछ बदल चुका था। अब कोई किसी गरीब असहाय व्यक्ति के ऊपर अत्याचार करने का साहस नहीं कर सकता। जहां भी जरूरत पड़ती कबीर साहेब ढाल बनकर खड़े हो जाते। दलित-शोषित व्यक्ति कबीर साहेब की छत्रछाया में संगठित एकजुट होकर अपनी समस्या को हल करने में सक्षम हो चुके थे। अब सिर उठाकर कहीं भी आने-जाने में उन्हें झिझक नहीं होती थी। यह सब कबीर साहेब की वजह से ही सम्भव हुआ था।

किन्तु जब लोगों को कबीर साहेब के काशी छोड़कर जाने का समाचार मिला तो वे एकबारगी सन्न रह गये। कबीर के अनुयायियों के साथ आम जनता भी उनके इस निर्णय से बेचैन हो उठी। उनके चले जाने से काशी सूनी हो जायेगी। अब काशी के गली-चौराहों पर भजन गाते हुए कबीर की आवाज सुनाई नहीं देगी। इसके अलावा उनकी अनुपस्थिति में पण्डों की फिर तूती बोलने लगेगी। आस्था के नाम पर पुनः लूट-खसोट शुरू हो जायेगी। यह अत्यन्त विचित्र बात थी कि कबीर के घोर विरोधी भी यह समाचार सुन सकते में आ गये

थे। लोग बाहर से आकर मोक्ष-धाम काशी में अपना प्राण त्यागते हैं लेकिन कबीर अपनी जन्मभूमि काशी छोड़कर मगहर जा रहे हैं। लोग कबीर साहेब से काशी न छोड़ने के लिए विनती करने उमड़ पड़े।

काशी के मैथिल पण्डितों ने भी उनसे निवेदन किया कि मोक्षधाम काशी को छोड़कर न जायें। तब कबीर साहेब ने उन्हें मुस्कुराते हुए जवाब दिया था, "हे पण्डितो, आप लोग भी बिलकुल भोले हैं। यदि आप मिथिला के सच्चे पण्डित हैं तो आप लोगों की मृत्यु भी मगहर में होनी चाहिए। क्योंकि जो मगहर में मरता है वह अमरत्व पाता है। यदि मगहर से अलग मरता है तो राम को लज्जित करता है। सारी जिन्दगी राम की भक्ति की, फिर भी काशी के बाहर मरने पर नरक मिला तो राम की भक्ति व्यर्थ है।"

कबीर साहेब के विवेक के आगे कभी कोई टिक सका है, जो आज पण्डित टिक पाते? उन्होंने पण्डितों को उन्हीं की शैली में जवाब दिया था। पण्डितों ने काशी की महिमा का बखान किया तो कबीर साहेब ने कहा कि मगहर में मरनेवाला मुक्त होता है। ऊपर से उनकी भक्ति को भी निरर्थक साबित कर दिया।

तब पण्डितों ने कहा, "साहेब जी, काशी में मरने पर मुक्ति की बात ढकोसला है तो मगहर में मुक्ति की बात ढकोसला क्यों नहीं?"

अब कबीर साहेब हंसने लगे, "बन्धुओ, मगहर का आशय ज्ञान का मार्ग है। जो ज्ञान के मार्ग में मरता है वह अमरत्व को प्राप्त करता है। और जो ज्ञान-मार्ग छोड़कर भावुकतापूर्वक काशी में मरकर मुक्ति की आशा करता है, वह राम-भजन की शक्ति को झूठा साबित करता है। जो विषय-वासनाओं को त्यागकर जीते जी मुक्त हो गया उसके लिए क्या काशी और क्या मगहर? सब बराबर है।

जियत न तरेउ, मुये का तरिहो।

भाइयो, आप मेरी चिंता न करें। जैसे पानी पानी में मिल जाता है, वैसे ही कबीर अपने स्वरूप-राम में पूर्णतया स्थित हो गया है। इसके लिए जैसी काशी, वैसा मगहर।"

हमेशा की तरह बेचारे पण्डित खामोश हो गये थे। वे कबीर को कबीर की भलाई के लिए रोकने नहीं गये थे बल्कि अपने लिए रोकने गये थे। क्योंकि वे जानते थे, कबीर के इस कदम से आम लोगों के मन में पवित्र नगरी काशी के प्रति आस्था घटेगी। वे महसूस करेंगे कि काशी में मरने पर मुक्ति की बात ढकोसला है। वैसे ही कबीर साहेब की वजह से लोगों में पूजा-पाठ के प्रति अब अधिक उत्साह नहीं रह गया है। मगर पण्डित आज भी अपने मकसद में सफल नहीं हुए थे।

कबीर साहेब का यह क्रान्तिकारी रूप देख काशी के लोग दंग रह गये थे। उन्होंने अपने जीवन काल में उनके अनेक रूपों को देखा था। वे गरीबों के मसीहा और महान समाज सुधारक थे। आम लोगों को वे पीर-पैगम्बर नजर आते थे। योगियों की दृष्टि में पक्के योगी और मस्तमौला संत दिखाई पड़ते थे। धर्मानुरागियों के लिए वे धर्मगुरु और आचार्य थे। कुछ लोगों की निगाह में वे सत्य के उपासक एवं अद्वैत ब्रह्मवादी थे। सन्तों को वे पक्के सूफी सन्त और वैष्णव जनों को शुद्ध वैष्णव जान पड़ते थे। साधकों को वे परम साधक और उपदेशक नजर आते थे। कवियों के लिए वे एक महान कवि एवं व्यंग्यकार थे। कविता उनके मुख से निकलकर धन्य हो गयी थी। यदि हम बहुत संक्षिप्त में कहें तो कबीर सिर्फ मानव थे। ऐसे महामानव जिनके हृदय में प्राणिमात्र के लिए करुणा और प्रेम था। वे जातिविहीन समाज की स्थापना के सूत्रधार थे। जातिगत श्रेष्ठता के कट्टर विरोधी एवं मानव धर्म के प्रवर्तक होने के साथ अध्यात्म के उच्चतम शिखर पर स्थित पूर्ण सन्त थे।

अन्ततः कबीर साहेब काशी छोड़कर चले गये। उन्हें बिदा करने गयी भीड़ भारी मन से आंखों में आंसू लिए लौट आयी थी। अब काशी की गलियों और चौराहों में भजन गाते हुए कबीर साहेब कभी दिखाई नहीं देंगे। न काशी के चौराहों पर उनका सत्संग होगा। मन्दिर-मस्जिद की सीढ़ियों पर खड़े होकर निर्भीकतापूर्वक पण्डित और मुल्लाओं को ललकारने वाला अब कोई नहीं रहा।

सूनी हो गयी काशी नगरी के दुख की कोई सीमा नहीं थी। आज उसका सपूत उसे सदा के लिए छोड़कर चला गया था। अब तक उसकी कोख से ऐसा बेदाग व्यक्तित्व लेकर किसी भी संतान ने जन्म नहीं लिया था। यद्यपि काशी नगरी के लिए कबीर का निर्णय दुखद था किन्तु उसे पता था उसकी महा निर्मोही संतान का यह निर्णय भी आम लोगों के कल्याण के लिए ही था। अपने निर्मोही स्वभाव के कारण ही कबीर का अपना कोई नहीं था और कोई पराया भी नहीं था। अपनी इस संतान के वियोग में काशी नगरी चुपचाप बहुत रोयी थी। काश, कोई उसके दर्द को समझ सकता। वह मन ही मन बिलखती रही, "कबीर, तुझे पाकर धन्य हो गयी थी मैं। तुझे यह भी आशीष नहीं दे सकती कि तेरा कल्याण हो और दोबारा मेरी कोख में जन्म ले क्योंकि तू तो पहले ही मुक्त हो चुका है।"

महाप्रयाण

कबीर साहेब के मगहर पहुंचने की सूचना पाकर वहां के बाशिंदे खुशी से झूम उठे थे। लोगों की भीड़ उनके स्वागत के लिए दौड़ पड़ी। सन्त शिरोमणि कबीर मगहर पधार रहे हैं, वह भी यहां शरीर छोड़ने। लोगों की दृष्टि में यह अत्यन्त आश्चर्यजनक घटना थी। वे कबीर के मगहर पदार्पण से कृतकृत्य हो गये थे। उन्हें लग रहा था कि कबीर की चरण धूलि पाकर मगहर पर पण्डितों की लगायी कालिख धुल गयी। वहां के स्थानीय नवाब बिजली खां तो कबीर के शिष्य ही थे। वे अपने दल-बल सहित उनकी सेवा में जा पहुंचे। कबीर साहेब ने अपनी सन्त मण्डली सहित आमी नदी के तट पर अपना आसन जमा दिया।

यह पूस का महीना था। सारा उत्तर भारत सर्द हवाओं की चपेट में था। उस वक्त ठण्ड में ठिठुरता सूरज अपनी अन्तिम किरणों को समेटकर अस्ताचल में छिपने को बेताब था। धीरे-धीरे अंधेरा आसमान से उतरता हुआ चारों ओर फैलता चला गया और इसी के साथ ही हवा में ठण्ड की मात्रा भी बढ़ती चली गयी। लेकिन मगहर में आज जैसे शाम को सूरज निकला था, लोगों के चेहरों पर खुशी की आभा दमक रही थी। बिजली खां के आदेश की देरी थी, देखते ही देखते वहां कबीर साहेब एवं अन्य सन्तों के लिए घास-फूस की कुटिया तैयार हो गयी। आस-पास कई मशालें एवं दीपक जला दिये गये और आमी नदी का वह वीरान तट रोशनी से जगमगा उठा। लगता था जैसे धरती पर सितारों से जगमगाता आकाश उतर आया हो। कबीर साहेब के आगमन से आज आमी नदी का भाग्य भी जागा था।

नवाब बिजली खां की बड़ी इच्छा थी कि कबीर साहेब अपना शेष जीवन उनके महल में बिताये। इसके लिए उन्होंने साहेब से बहुत अनुनय-विनय किया, पर साहेब वहां जाने को राजी नहीं हुए, कहा, "बिजली खां! तुम्हारे ही आश्रय में हूं, यहां-वहां में क्या फर्क पड़ता है? वैसे भी यहां आने से तुम्हारे ऊपर भार पड़ने वाला है। आने-जाने वाले सन्त-भक्तों की यथायोग्य सेवा की व्यवस्था तो तुम्हें ही करनी होगी।"

बिजली खां दोनों हाथ जोड़कर बोले, "यह तो मगहर का परम सौभाग्य है साहेब जी, जो आपने कृपा की। यहां आकर आपने मगहर को ऋणी बना लिया। आपके साथ मगहर भी सदा के लिए अमर हो गया।"

दूसरे दिन से आमी नदी के तट पर जहां कबीर साहेब की कुटिया बनी थी रोज सबेरे-शाम सत्संग-भजन होने लगा। दूर-दूर से संत, भक्त एवं श्रद्धालु साहेब के दर्शनार्थ पहुंचते और उनका आशीर्वचन लेकर लौट जाते। रोज वहां मेला का-सा माहौल था। बिजली खां खुश थे कि उन्हें सन्तों की सेवा का अवसर मिला था।

धीरे-धीरे वक्त बीतता चला गया। पूस का महीना खत्म हो गया था और अब ठण्ड की मात्रा भी कम हो गयी थी। माघ महीना के लगते ही कबीर साहेब ने अन्न ग्रहण करना बन्द कर दिया। शायद जठराग्नि मंद पड़ती जा रही थी। अब शरीर संचालन के लिए केवल पेय पदार्थ लेने लगे। दोनों पहर वे सत्संग अब भी करते थे और भजन भी गाते थे। इसके अतिरिक्त बाहर से आने वाले तमाम लोगों से वे दिनभर मिलते और उनका परिचय एवं कुशल-क्षेम जरूर पूछते। सबेरे-शाम आमी के तट पर थोड़ी चहल-कदमी भी हो जाती थी। लेकिन

अब उन्हें लग रहा था कि शरीर अधिक दिनों तक साथ देने के लिए तैयार नहीं है।

इसी तरह कुछ दिन और बीत गये थे। अब वे सन्तों का सहारा लेकर लोगों के दर्शनार्थ बाहर आसन पर विराजते और वहीं आराम करते। अब उनकी वाणी अवरुद्ध होती जा रही थी तथा वे अक्सर अपने आप में लीन हो जाते थे। कई बार जब वे समाधिस्थ हो जाते तो वर्तमान में लाने के लिए उन्हें हलके से झकझोरना पड़ता था। धीरे-धीरे उन्हें महाप्रयाण की ओर बढ़ते देख लोगों के मन में उदासी बढ़ती चली गयी और उनके दर्शनार्थ आनेवालों का तांता लग गया। इसमें हिन्दू भी होते थे और मुसलमान भी। सत्संग-भजन अब भी होता था लेकिन कबीर साहेब अब कम ही बोलते थे। पिछली बार श्रद्धालुओं की विनती पर जब उन्होंने भजन सुनाया था, लोगों की आंखें भीग गयी थीं—

कौनो ठगवा नगरिया लूटल हो।
चंदन काठ के बनल खटोलना, ता पर दुलहिन सूतल हो।
उठो री सखी मोरी मांग संवारो, दूलहा मोसे रूठल हो।
आये यमराज पलंग चढ़ि बैठे, नैनन आँसू छूटल हो।
चारि जने मिलि खाट उठाइन, चहुं दिशि धू-धू उठल हो।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, जग से नाता छूटल हो।

भजन की समाप्ति के साथ कबीर साहेब मुस्कुराते थे, पर श्रोता रोते थे। साहेब के चले जाने के बाद यह मगहर भी सूना हो जायेगा। सन्त कबीर ने यहां आकर पण्डितों के इस कुचक्र को तोड़ दिया था कि मगहर में मरनेवाला गधा योनि में पैदा होता है। वस्तुतः यह स्वार्थी पण्डितों के द्वारा जान-बूझकर बौद्धों के प्रभाव को कम करने के लिए रची गयी साजिश थी क्योंकि गया तथा मगहर में बौद्ध धर्म का व्यापक असर था और लोग पण्डे-पुजारियों के पूजा-पाठ से दूर भागते थे। दो हजार साल पहले भगवान बुद्ध ने ईश्वर की कल्पना को निरर्थक सिद्ध करके मानव और उसकी महिमा का प्रतिपादन किया था। इसलिए पण्डितों ने काशी में मुक्ति की बात को खूब प्रचारित किया। ताकि लोग मगहर न जाकर मुक्ति की आस में काशी आयें और उनको पूजा-भेंट देते रहें। किन्तु सन्त कबीर ने मगहर में शरीर छोड़ने के उद्देश्य से पहुंचकर पण्डितों की इस मंशा को भी चकनाचूर करके रख दिया। पण्डितों की इस ढकोसला का खण्डन केवल निर्भीक, निर्भ्रान्त कबीर ही कर सकते थे। यह और किसी के वश की बात नहीं थी।

और अन्ततः वह दिन भी आ ही गया जिसकी सन्त कबीर को प्रतीक्षा थी और मगहर के लोग जिसकी कल्पना करके ही कांपते थे।

जेहि मरने से जग डरै, मेरो मन आनन्द।
कब मरिहौं कब पाइहौं, पूरन परमानन्द ॥

वि.सं. 1575 के माघ शुक्ल एकादशी की रात्रि चौथे पहर सन्त कबीर अपना शरीर त्यागकर आत्मलीन हो गये। उस वक्त सारा आकाश निर्मल था और ठण्ड में ठिठुरते तारे जाग रहे थे। चन्द्रमा अपनी सारी रोशनी समेटकर उसी वक्त पश्चिम में जाकर छिप गया था लेकिन पूरब में भोर का तारा गज भर ऊपर चढ़ आया था, पर आज उसकी चमक बेहद फीकी जान पड़ती थी। मालूम पड़ता था कबीर साहेब के नहीं रहने से वह भी उदास हो गया था। उत्तर में ध्रुव तारा भी रोता हुआ-सा टिमटिमा रहा था। सन्त कबीर के शरीर छूट जाने का आभास होते ही वहां कोहराम मच गया। वहां उपस्थित सन्त-भक्तों की आंखों से आंसू छलक उठे। कुछ भक्त अपने को संभाल नहीं सके, उनका करुण क्रंदन उस रात की नीरवता में दूर तक गूंज उठा। अचानक हुई इस हलचल और शोर से आमी नदी के तट पर खड़े वृक्षों पर बसेरा करने वाले परिंदे जाग उठे और अपने पंख फड़फड़ाकर शोर करने लगे।

तत्काल कबीर साहेब के देहावसान की सूचना गहोरानरेश वीरसिंह देव बघेल तथा मगहर के नवाब बिजली खां के पास भेजी गयी। समाचार पहुंचते ही सारा मगहर शोक में डूब गया। सूर्योदय से पहले ही आज मगहर का सूर्य अस्त हो गया था। जो भी सुना स्वयं को रोक नहीं पाया और कबीर साहेब के अन्तिम दर्शन के लिए आमी नदी के तट की ओर दौड़ पड़ा। लोगों का दिल रोता था और आंखों से आसू बहते थे। कबीर साहेब ने मगहर में अपने प्राण त्यागकर मगहर को सदा के लिए अमर कर दिया था और पण्डितों के द्वारा लगाये कलंक से इसे मुक्ति मिल गयी थी।

देखते ही देखते वहां लोगों की भीड़ जमा हो गयी। कबीर साहेब के शरीरांत का समाचार चारों ओर बिजली की गति से फैल गया था और हर जाति-पंथ के लोग अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करने दौड़ पड़े। हर व्यक्ति के मन में कबीर साहेब के लिए अपार श्रद्धा थी। क्योंकि उन्होंने इंसान को उनकी शक्ति का एहसास कराया था कि वह स्वयं शक्तिमान, कर्ता एवं भोक्ता है तथा पुरुषार्थ करके सारे बन्धनों से मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त कर सकता है। वे अक्सर कहा करते थे—

करु बहियां बल आपनी, छाड़ बिरानी आस।
जाके आंगन नदिया बहै, सो कस मरे पियास॥

उनकी इस वाणी से लोगों के भीतर का आत्मविश्वास जाग उठा था और वे सीना तानकर उठ खड़े हुए थे। आज उनका वही मार्गदर्शक, संबल प्रदाता सदा के लिए उन्हें छोड़कर चला गया था।

अन्य सन्त-भक्तों के साथ वहां श्रुतिगोपाल साहेब, भगवान साहेब भी निरंतर साहेब की सेवा में लगे हुए थे, कुछ विलंब से गहोरानरेश वीरसिंह बघेल भी पहुंच गये। बिजली खां तो तत्काल आ गये थे। चूंकि कबीर साहेब के अनुयायियों में हिन्दू भी थे और मुसलमान भी थे अतः वहां उपस्थित सन्त-भक्त उनके अन्तिम संस्कार को लेकर विचार-विमर्श करने लगे। हिन्दू चाहते थे कि साहेब जी का अंतिम संस्कार पूर्ण हिन्दू रीति-रिवाज के साथ संपन्न होना चाहिए, लेकिन मुसलमानों का तर्क था कि कबीर साहेब का लालन-पालन मुस्लिम परिवार में हुआ है इसके अतिरिक्त उन्होंने अंतिम बेला में काशी त्यागकर अपने शिष्य बिजली खां को सेवा का अवसर प्रदान किया इसलिए समाधि देना ही उचित है।

लेकिन हिन्दू भक्त एवं गहोरानरेश वीरसिंह इसके लिए सहमत नहीं थे। उनका तर्क था कि गुरुदेव का जन्म हिन्दुओं की पवित्र नगरी काशी में हुआ है, इसके अतिरिक्त उनका पूरा जीवन भी वहीं व्यतीत हुआ इसलिए साहेब जी के शरीर का अंतिम संस्कार करने का अधिकार उनका है। बात धीरे-धीरे अधिकार और प्रतिष्ठा पर पहुंच गई थी। और दोनों ही समुदाय के लोग अपना अधिकार छोड़ने को राजी नहीं थे अतः उनके बीच विवाद बढ़ता ही चला गया।

यह बड़ी अजीब स्थिति थी कि हिन्दू चिता जलाना चाहते थे और मुसलमान कब्र बनाकर समाधि देने के लिए उतावले हो रहे थे। संतों के बहुत समझाने पर भी दोनों अपनी-अपनी जिद पर अड़े हुए थे तथा मरने-मारने पर उतारू थे। स्थिति को बिगड़ते देख आखिर भगवान साहेब उन दोनों के मध्य जाकर खड़े हो गये और बोले, "गुरुदेव के शरीर पर आप दोनों का बराबर का हक है। मेरी मानिये इस शरीर के दो टुकड़े कर दीजिये। एक हिन्दू ले लें, दूसरे को मुसलमान। दोनों की इच्छा पूरी हो जायेगी।"

इतना सुनते ही वहां सन्नाटा छा गया था मानो सबको सांप सूंघ गया हो। सब एकदम खामोश एक दूसरे का मुंह ताकने लगे। किसी को कुछ सूझ नहीं रहा था कि क्या कहें? कुछ देर बाद वीरसिंह बोले थे, "यह आप क्या कह रहे हैं? हम इतने स्वार्थी तो नहीं हैं।"

जवाब में भगवान साहेब तत्काल बोल उठे, "ठीक ही तो कह रहा हूं। जिस संत ने सारी जिंदगी हिन्दू-मुसलिम एकता के लिए संघर्ष किया, आज उसी के नाम पर हिन्दू-मुस्लिम आपस में लड़ रहे हैं। वह भी उनके शरीर के अंतिम संस्कार के लिए।"

बात हृदय को बेध गयी थी। बिजली खां और वीरसिंह दोनों को जोर का झटका लगा था। शर्मिंदगी के साथ उनके चेहरे पर पश्चाताप की लकीर उभर आयी। बिजली खां ने हाथ जोड़कर क्षमा मांगी और वीरसिंह से निवेदन किया कि वे अपनी रीति-रिवाज से साहेब जी का अंतिम संस्कार पूर्ण करें बस इतनी-सी प्रार्थना है कि यहीं करें।

वीरसिंह भी लज्जित थे उन्होंने बिजली खां से क्षमा प्रार्थना के साथ कबीर साहेब के शरीर को समाधि देने का अनुरोध किया। इस तरह हिन्दू-मुसलमान दोनों अपना मतभेद भुलाकर उनके शरीर का अंतिम संस्कार संपन्न करने में व्यस्त हो गये थे। उसी समय उपस्थित जन समुदाय के बीच से जोर की आवाज आयी थी—

कबीर खड़ा बाजार में, मांगे सब की खैर।
ना काहू से दोस्ती, ना काहू से बैर॥

प्रवचन

कबीर की दृष्टि में श्रमिकों का महत्त्व

(परम पूज्यवर गुरुदेव श्री अभिलाष साहेब जी द्वारा दिनांक 29-10-1993 को कबीर मंदिर, प्रीतमनगर, इलाहाबाद में वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर दिया गया प्रवचन। प्रस्तुति— श्री रामकेश्वर जी)

सज्जनो तथा देवियो!

श्रद्धा बड़े काम की चीज है लेकिन श्रद्धा में अतिवाद कर दिया जाता है तो श्रद्धा का वही अतिवाद हिंसा को जन्म देता है। लोग जहां श्रद्धा रखते हैं रखें, यह बड़ी अच्छी बात है क्योंकि श्रद्धालु होना चाहिए लेकिन लोग इतने श्रद्धालु हो गये कि दूसरे का गला काटने को तैयार हो गये, दूसरे के भगवान और देवता को गाली देने के लिए तैयार हो गये, दूसरे के अनुशास्ता और गुरु को नास्तिक और काफिर कहने के लिए तैयार हो गये। यह अतिश्रद्धा हो गयी है। इस अतिश्रद्धा ने इतना ताण्डव मचाया है कि सदा-सदा से इसने मानवता की हत्या की है। यह बात सत्य है कि श्रद्धाहीन व्यक्ति कहीं का नहीं होता है लेकिन अतिश्रद्धा भी महा विनाशक है। धर्म के क्षेत्र में 'काफिर', 'नास्तिक' ये शब्द अतिश्रद्धा वालों ने ही गढ़े हैं। इस दुनिया में आजतक मैं किसी को नास्तिक नहीं पाया।

प्रायः लोग कहते हैं कि मार्क्स नास्तिक है क्योंकि वह कुछ नहीं मानता है और मार्क्स की शिक्षाओं से बड़ा खून-खराबा हुआ है लेकिन वे लोग देखें तो धर्म की शिक्षाओं से जितना खून-खराबा हुआ है उसका शतांश भी खून-खराबा मार्क्स के उपदेश से नहीं हुआ। इन धर्मवालों ने पहले के जमाने में जो गजब ढाया है उसको आप इतिहास और पुराण को पढ़कर जान सकते हैं और आज भी जो हो रहा है उसे तो आप देख ही रहे हैं। धर्म के नाम पर पहले से जो वैमनस्य चला आ रहा है और आज भी चल रहा है वह कितना अहितकर है। इसलिए श्रद्धा है तो बड़े काम की चीज लेकिन उसमें अति हो जाने पर वह श्रद्धा बहुत नुकसान करनेवाली है। इसलिए श्रद्धा का अतिवाद नहीं होना चाहिए।

संसार में जितने महापुरुष हैं केवल मानव हैं। जैसे अभी पूर्व प्रवक्ता ने बताया था कि कबीर साहेब भगवान नहीं थे। उनकी यह बात बिलकुल सच है और दूसरे ढंग से भगवान थे, यह भी सच है। पहले जमाने में अच्छे पुरुषों को, ऋषियों को और संतों को भगवान कहा जाता था। जैसे आप वालमीकि रामायण पढ़कर देखिये तो उसमें आप पायेंगे कि अगस्त्य, भारद्वाज तथा और भी अनेक महापुरुषों को भगवान कहा गया है लेकिन पूरी वालमीकि रामायण में राम को भगवान नहीं कहा गया है। राम को "पुरुषसिंह", "नरव्याघ्र" कहा गया है जिसका अर्थ होता है पुरुषों में सिंह, नरों में व्याघ्र के समान वीर। राम के लिए इस प्रकार उन्होंने अच्छे-अच्छे संबोधन किये लेकिन उनको 'भगवान' नहीं कहा।

जब अयोध्या से राम वनवास करने जाते हैं तो यहां प्रयाग में भारद्वाज ऋषि के आश्रम में आते हैं, यहां उन्होंने भारद्वाज से बातें करते हुए पांच बार उनको 'भगवान' कहा है और भारद्वाज ऋषि ने राम को प्रिय कहा है और वत्स कहा है। इसलिए यह लगता है कि पहले जमाने में संतों, ऋषियों को भगवान कहा जाता था। उस ढंग से जितने महापुरुष हैं, सब भगवान हैं लेकिन एक जो चमत्कारिक रूप में, अतिमानव के रूप में साम्प्रदायिक भावना बनाकर जो भगवान कहा जाता है और फिर उस भगवान को अपनी परम्परा और अपने सम्प्रदाय का गुलाम बना लिया जाता है, यह बहुत गलत है।

आज सबके अपने-अपने ईश्वर हैं। सभी मतवालों ने ईश्वर को अपने मत में दीक्षित कर लिया और उसको अपने ढंग से बना लिया है। ईश्वर को स्वतंत्र नहीं रहने दिया है। कबीर साहेब ऐसा भगवान नहीं थे। वे तो मनुष्य थे, संत थे और महापुरुष थे। अगर ऐसे महापुरुष को भगवान कहा जाये तो वे भगवान थे

लेकिन कहीं ऐसा भगवान जो किसी सम्प्रदाय को चलाया हो और जिसमें जो दीक्षित हो उसी का स्वर्ग या मोक्ष होगा बाकी का नरक होगा ऐसे भगवान कबीर साहेब नहीं थे। अगर यह कहा जाये कि कबीर ऐसे भगवान थे जिनकी शरण में जाने से ही मोक्ष होगा, नहीं तो नरक होगा ऐसे भगवान कबीर नहीं थे।

कबीर मनुष्य थे, संत थे और महापुरुष थे और इसी प्रकार दुनिया के सभी महापुरुषों के बारे में जान लीजिए। कोई महापुरुष आकाश से नहीं आया है। सभी महापुरुष मानव हैं लेकिन सभी महापुरुषों पर अवतारवाद थोपा गया है और इस अवतारवाद की भावना ने मनुष्यता को बांटा है और कहा गया है कि हमारा महापुरुष अवतार है, हमारा महापुरुष पैगम्बर है, हमारा महापुरुष ईश्वर का पुत्र है। अब हमारा महापुरुष ईश्वर का पुत्र है तो इसकी शरण में जो नहीं जायेगा वह अपवित्र है। हमारा महापुरुष ईश्वर का पैगम्बर है तो उसकी शरण में जो नहीं जायेगा वह काफिर है और वह नरक में जायेगा। उसके लिए स्वर्ग या मोक्ष कभी सम्भव नहीं है। हमारा महापुरुष अवतार है तो उसकी शरण में जो नहीं जायेगा वह बिना 'सींग-पूंछ का पशु है' इस अवतारवाद, पैगम्बरवाद और ईश्वर-पुत्रवाद ने धर्म की जो छीछालेदर की है कि हद है। वास्तविकता तो यह है कि मनुष्य केवल मनुष्य है और बीच-बीच में जितने महापुरुष हुए वे मनुष्य थे। वे सत्य और त्याग के पथ पर चलकर हमें रास्ता दिखाये हैं। हमें उसपर विचार करना चाहिए और उसपर चलना चाहिए। उनकी जो बात ठीक न लगे उसको छोड़ना चाहिए और जो ठीक लगे उसपर चलना चाहिए। अतिश्रद्धा में हमें नहीं पड़ना चाहिए। अतिश्रद्धा हमें बताती है कि हमें अपनी परम्परा को पूरी तरह मान लेनी चाहिए और अश्रद्धा यह बताती है कि सारी परम्पराओं को विदग्ध कर देना चाहिए।

आजकल जो नयी पीढ़ी है वह कहती है कि सारे धर्मग्रंथों को पानी में फेंक दो। ये धार्मिक महापुरुष कहलानेवाले जितने लोग हैं इनको भूल जाओ। इन्होंने देश और मानवता को बरबाद किया है। अब यह भी एक अतिवाद है। सारे धर्मग्रंथों को नकार दिया जाये तब बचेगा क्या। और सारे धर्मग्रंथों की सारी बातों को तो कोई भी नहीं मानता है। जो कहता है कि मैं अमुक महापुरुष का अनुयायी हूं, अनुगामी हूं वही उनको नहीं मानता है और जब मानता भी है तो अपना नया अर्थ लगा लेता है कि इस ढंग से है। इसलिए विचार तो सब करते हैं और विचार करना चाहिए, विचार होना चाहिए।

हम लोगों को यह बात ठीक से समझ लेनी चाहिए कि अवतारवाद, पैगम्बरवाद, ईश्वर-पुत्रवाद ये मनुष्यता को बांटते हैं और जितने महापुरुष हैं सब केवल मानव हैं। जितनी किताबें हैं केवल मानव की लिखी हुई हैं। किसी महापुरुष, किसी किताब और किसी सम्प्रदाय को मानने से स्वर्ग होगा और न मानने से नरक होगा, मानने से आस्तिक और दीनदार है और न मानने से काफिर और बेदीन है ये सब झूठी बातें हैं और ये ही बातें मनुष्यता को बांटती हैं। इसको साफ-साफ समझना चाहिए और इनका आचरण करना चाहिए। इन विचारों का प्रचार करना चाहिए तभी मनुष्य में मनुष्यता आयेगी।

जब ऐसा होगा तब राम भी प्रिय होंगे और रहीम भी प्रिय होंगे। तब ईसा भी प्रिय होंगे और कृष्ण भी प्रिय होंगे, मोहम्मद भी प्रिय होंगे और बुद्ध तथा महावीर भी प्रिय होंगे। तब लाओत्जे और कन्फूसियस भी प्रिय होंगे, सुकरात भी प्रिय होंगे और जरस्थुस्त्र आदि सब प्रिय होंगे। ये सब महापुरुष हैं और सब आदरणीय हैं। कोई सत्य का ठेकेदार नहीं है। सत्य सबके अन्दर में है।

गुरु की जरूरत है क्योंकि वह प्रकाश देता है। और वह प्रकाश क्या देता है, रास्ता बताता है कि जो मेरे में है वही तेरे में भी है। गुरु अपने हृदय में से कुछ निकालकर शिष्य के हृदय में डालते नहीं किंतु रास्ता बताते हैं कि जो मैं हूं वही तू है, जो सत्य मेरे में है वही सत्य तेरे में है। तू अपनी तरफ लौटकर देख। इसलिए गुरु की जरूरत है। सामान्य बातों के लिए भी गुरु की जरूरत पड़ती है लेकिन कोई सम्प्रदाय या कोई

महापुरुष सत्य का एकाधिकारी और ठेकेदार नहीं है। यह बिलकुल भूल जाना चाहिए कि दुनिया में कोई महापुरुष सत्य का ठेकेदार है।

यही कबीर साहेब का उपदेश है। वे कहते हैं कि कोई महापुरुष ऐसा नहीं है जो सत्य का एकाधिकारी हो। उन्होंने यहां तक कहा है—"जबतक ना देखै निज नैना, तबतक माने ना गुरु बैना'—जबतक अपने विवेक नेत्रों से न देख लो तब तक गुरु के वचनों को भी न मानो। गुरु की बातों पर विचार करना कोई पाप नहीं है। अगर गुरु से कोई गलत बात निकले तो उसको मानने से न तो हमारा कोई कल्याण है और न गुरु का ही कोई कल्याण है। विचार कर लेने में कोई पाप नहीं लगता है। आप निर्भय होकर विचार करो। विचार कर लेना अश्रद्धा नहीं है। "श्रद्धा" शब्द का शाब्दिक अर्थ होता है सत्य को धारण करने की क्षमता। 'श्रत्' और 'धा' ये दो शब्द मिलकर "श्रद्धा" शब्द बनता है। "श्रत्" यानी सत्य और "धा" यानी धारण करना। जो बुद्धि सत्य को धारण करे, जो मानसिक शक्ति सत्य को धारण करे वह श्रद्धा है लेकिन अब श्रद्धा का अर्थ हो गया है अंधविश्वास। लोग कहते हैं कि अरे क्या आपको श्रद्धा नहीं है। श्रद्धा को इतना सस्ता बना डाला गया है कि हद हो गयी है।

कबीर साहेब के इस बात को सब जानते हैं कि वे मनुष्य को केवल मनुष्य मानते थे और वे चाहते थे कि मनुष्य जब मनुष्य से मिले तो जाति न पूछे, क्योंकि मनुष्य की जाति तो मनुष्य है ही फिर उसमें जाति पूछने की क्या जरूरत है।

जाति का मतलब ही होता है पैदा होना। जिनकी पैदाइश एक जैसी है उनकी जाति एक है। जिनकी पैदाइश भिन्न है उनकी जाति भिन्न है। बकरी और शूकर से बच्चे नहीं होते इसलिए दोनों की जाति भिन्न है। ऊंटनी और हाथी से बच्चे नहीं होते इसलिए उनकी जातियां अलग-अलग हैं लेकिन मनुष्य में कहीं का भी पुरुष हो और कहीं की भी स्त्री हो उनसे बच्चे होते हैं। इसलिए पूरे मानव की जाति एक है। हां, कहीं के लोग ज्यादा गोरे होते हैं और कहीं के लोग ज्यादा काले। यह जलवायु के कारण से हो जाता है। कश्मीर में जिसको आप शूद्र कहते हैं वे भी गोरे होते हैं और मद्रास में जिनको आप ब्राह्मण कहते हैं वे भी काले होते हैं। हमारे महापुरुष राम और कृष्ण दोनों काले थे। और कृष्ण तो इतने काले थे कि उनको "घनश्याम" कहा गया। अब उनको निकालकर कहां बाहर कर दोगे। इसलिए सांवला और गोरा होने से फरक क्या होता है। यह बहुत पीड़ा की बात है कि आज आदमी की जाति पूछकर उसकी कीमत मानी जाती है। हालांकि आज इस युग में इसमें काफी सुधार हुआ है लेकिन आज भी यह सब चल रहा है।

कितने आफिसों में काम करनेवाले लोग अपना अनुभव बताते हैं। विश्वविद्यालयों में कितने छात्र-छात्राएं पढ़ने जाते हैं वे नाम लिखाते हैं तो प्राचार्य पूछता है तुम्हारा क्या नाम है? छात्र बताता है—"जी, अवनीश।"

तब प्राचार्य पूछता है-"और आगे क्या लगाते हो?" छात्र कहता है कि मैं तो आगे कुछ नहीं लगाता हूं। लेकिन प्राचार्य को संतोष नहीं होता है और वह छात्र से कहता है—"नहीं, नहीं, आगे जो लगाते हो उसको बताओ भाई, उसको जानूंगा और तब समझूंगा कि तुम कौन हो।' आजकल के प्राचार्यों की ऐसी दशा है। अब उनको प्राचार्य कहा जाये कि और कुछ कहा जाये। किस शब्द से उनको संबोधित किया जाये। क्या आचार्य का यही अर्थ होता है। आचार्य का मतलब होता है—"आचिनोति च शास्त्राणि आचारेस्थापयत्यपि, स्वयमा-चरते यस्तु तमाचार्यं प्रचक्षते।" जो शास्त्रों की आलोचना करे, समीक्षा करे, विचार का निर्धारण करे और उसका समाज में उपदेश दे और स्वयं भी उसका आचरण करे वही आचार्य कहलाता है। और अब कोई आचार्य है लेकिन शैवाल में ही उलझ गया है, मोती को नहीं देख रहा है तो वह आचार्य कैसा है।

कई लड़के जब अपना दुख बताते हैं तो मुझे बड़ी पीड़ा होती है। कितने युवक कालेज में पढ़ने के लिए नाम लिखाने जाते हैं तो आचार्य लोग पूछते हैं कि

तुम्हारी जाति क्या है? कई लोग तो ऐसा भी कहते हैं कि अच्छा, आपका दूध क्या है? मतलब है कि जाति क्या है? वे पूछते हैं कि भाई, तुम्हारी कौन-सी जाति है? फिर कहते हैं कि "देखो, मैं भी जाति-पांति नहीं मानता हूं लेकिन ऐसे ही पूछ रहा हूं।" मैं उनसे कहता हूं कि भले आदमी! जब नहीं मानते हो तब ऐसे क्यों पूछते हो। यही तो हृदय की मलिनता है।

हमारे अन्दर में गंदगी है तभी हम जाति पूछते हैं। अगर गंदगी निकल जाये तो जाति पूछने की जरूरत ही नहीं है और यह गंदगी हजारों वर्षों से भरी है। इसे निकलने में इसीलिए देरी लग रही है कि बेवकूफी है। परन्तु यह मोह छोड़ देना चाहिए। जाति पूछकर मनुष्य का मूल्यांकन करना महा अपराध है और कहना चाहिए कि महापाप है। तलवार से किसी को काट देना पाप है और किसी के मन में यह बैठा देना कि तुम नीच जाति के हो यह महापाप है। तलवार से काट दिया तो एक ही बार में आदमी मर गया लेकिन उसके मन में यह बैठा देना कि तुम अमुक जाति में पैदा हुए हो इसलिए नीच हो, यह महापाप है। इसप्रकार उनके हृदय को ही कुण्ठित कर दिया गया और दुर्भाग्यवश कुण्ठित करने का ऐसा व्यवहार बहुत दिनों से चल रहा है।

आज भी अच्छे-अच्छे पंडित और महामण्डलेश्वर तक जब उनसे बात चलती है तो कहते हैं कि हां, आप जो कहते हैं वह तो सोलहों आने सच है लेकिन शास्त्र की अपनी मर्यादा है। लेकिन क्या शास्त्र की यही मर्यादा है कि एक आदमी अमुक जाति में पैदा है इसलिए वह नीच है और एक आदमी अमुक जाति में पैदा है इसलिए उच्च है। यह महापाप किस शास्त्र की मर्यादा है। किसी शास्त्र की ऐसी मर्यादा नहीं है किंतु यह जो कहता है उसकी हृदयहीनता है, मन की मलिनता है।

एक बार हरिद्वार में एक सम्मेलन हुआ था तो उसमें ऐसी बात आयी थी। मैं भी उसमें उपस्थित था। मैंने यही चर्चा वहां की थी तो एक महामण्डलेश्वर ने कहा था कि आपकी बात तो बिलकुल सच है लेकिन शास्त्र की मर्यादा है। तब मैंने कहा—आप कौन शास्त्र मानते हैं? तो वे चुप हो गये।

मैंने कहा—हिन्दू धर्म में सारे धर्मशास्त्रों की परिसीमा कहां है? तब वे कहे कि यह तो सब जानते हैं कि वेद है। तब मैंने कहा—चारों वेदों में यह आप बतला दीजिए कि कहां लिखा है कि अमुक खानदान में पैदा होने से आदमी छोटा होता है और अमुक खानदान में पैदा होने से आदमी बड़ा होता है। यह कहां लिखा है कि पैदा होने मात्र से आदमी नीच-ऊंच होता है और छुआछूत कुछ होती है। तो कहीं नहीं बता पाते हैं। ऋग्वेद में पुरुषसूक्त में यह बात आयी है—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्य कृतः।
उरू तदस्य यद्वैश्यः पदाभ्यां शूद्रो अजायत्॥

उस विराटपुरुष का मुख ब्राह्मण था—पैदा हुआ, ऐसा नहीं लिखा है। उसका मुख ब्राह्मण था या ब्राह्मण है। उसके बाहु राजन्य है, क्षत्रिय है। उसके उरू-जंघे वैश्य हैं और 'पदभ्यां शूद्रोऽजायत' पैर से शूद्र पैदा हुए। क्या कोई ऐसा विराट पुरुष हुआ है जिसके हाथ-पैर से सब पैदा हुए हों? यह लाक्षणिक कथन है।

अभिधा, लक्षणा और व्यंजना—शब्द के अर्थ करने की ये तीन शक्तियां हैं। जहां लक्षणा है वहां अभिधा अर्थ नहीं लगता है। यहां लक्षणा है कि मुख के जो गुण हैं वे जिसमें हों वही ब्राह्मण है। मुख चमकता है और नंगा रहता है। जो तपस्वी हो और प्रसन्न रहता हो, वह ब्राह्मण है। मुख से ज्ञान का प्रवचन होता है इसलिए जो ज्ञानदाता हो वह ब्राह्मण है। मुख के आस-पास ही सब ज्ञानेन्द्रियां हैं जैसे आंख, नाक, कान और मस्तिष्क, तो मुख ज्ञान का भण्डार है। इस प्रकार जो ज्ञान का भण्डार है वह ब्राह्मण है।

हाथ से हम शरीर की रक्षा करते हैं। कीड़े कहीं काट रहे हों तो हाथ वहां झट से पहुंच जाता है। जंघे के बलपर धन कमाया जाता है। बूढ़े अपने जवान लड़कों से कहते हैं कि देखो भइया, हमें अभी आंख न दिखाओ। अभी हमारे जंघा में बल है, कमाकर खा सकता हूं। जंघा में बल होता है तभी कमाया जा सकता

है। इसीलिए "उरु तदस्य यद्वैश्यः" कहा गया। "पदभ्यां शूद्रो अजायत"—पैर से शूद्र हुए। जो कर्मकर हैं वे पैर से पैदा हुए हैं। यहां पैर से कर्मकर की तुलना है। पैर ही पर तो पूरा शरीर स्थित रहता है। इसी प्रकार कर्मकरों पर पूरा समाज स्थित है। कर्मकरों को पहले बुरा नहीं माना गया है। ऋग्वेद के दशम मंडल में ऐसी बात आयी है कि ऋषि कपड़ा बुनता है। वे जुलाहा भी होते हैं, बढ़ई का काम भी करते हैं, दवाई भी कूटते हैं और भाड़ भी भूंजते हैं। एक ऋषि कहते हैं— मैं मंत्रद्रष्टा हूं। मेरी लड़की जौ भूनती है। मेरा लड़का वैद्य है। एक ही परिवार में सब प्रकार के काम करनेवाले हैं। कर्मकरों के प्रति घृणा वैदिक युग में बिलकुल नहीं थी।

जितने वैदिक ऋषि हैं सब करीब-करीब चरवाहे हैं। वे गायें चराते थे। गोदान वैदिक साहित्य में दिखाई देता है। वेद में द्रव्यदान, भूमिदान की बात नहीं आती है। ऋषि लोग गाय रखते थे। वे लोग चरवाहे थे और चरवाहा होना कोई बुरा नहीं है। कर्मकरों के प्रति पहले श्रद्धा थी। धीरे-धीरे जब वर्णव्यवस्था हुई और बाद में जब तल्खरूप में हो गयी थी तब यह मंत्र लिखा गया है "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्।" उत्तर वैदिक काल में यह लिखा गया है क्योंकि यह सरल है। वेदों के मंत्रों को पढ़ करके, इसकी भाषाशैली की सरलता के साक्ष्य में काल निर्धारित किया जाता है।

पहले के जो वेद मंत्र हैं उनको समझना कठिन है लेकिन यह मंत्र मालूम होता कि जैसे भागवत, गीता या पुराण का मंत्र हो-'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्।" वेद के जो सरल मंत्र बने हैं वे पीछे के बने हैं। यह मंत्र भी पीछे का ही बना है। जब वर्णव्यवस्था कायम की गयी तब वह सरल थी। उसमें कोई छुआछूत की बात न थी। शादी-विवाह का कोई विभेद नहीं था और कुछ भी विभेद नहीं था। केवल कुछ पूजा करनेवाले, ज्ञान देनेवाले तपस्वी लोगों को ब्राह्मण कहा गया। समाज रक्षक को क्षत्रिय और जो धनार्जन करनेवाले हुए उनको वैश्य और श्रमिक को शूद्र कहा गया लेकिन भेदभाव कुछ भी नहीं था। धीरे-धीरे भेदभाव बढ़ता गया। जो कर्मकर समाज के हाथ-पैर हैं उन कर्मकरों को अछूत होने का फतवा दिया और कहा वे अछूत हैं। यह कितना बड़ा पाप है!

जो तेल पेरता है वह अभागा है और जो तेल खाता है वह सुभागा। सुबह उठो तो तेली का मुख देख लो तो पाप है लेकिन जो तेल खाता है वह पापी नहीं है। यह कैसी वाहियात बात है। अगर तेल पेरना पाप है तो तेल खाना महापाप है।

अगर फर्नीचर बनाना गलत है और बढ़ई अछूत है तो फर्नीचर का उपयोग करना महापाप है। अगर कपड़ा बुनना छोटा काम है तो कपड़ा पहनना अति छोटा काम है। अन्न पैदा करना अगर निम्न वर्ग का काम है, अथवा अन्न पैदा करना छोटा काम है, खराब काम है और अन्न पैदा करनेवाले अछूत हैं तो अन्न खानेवाले महा अछूत हैं। लेकिन अन्न खानेवाले पुनीत हैं और अन्न पैदा करनेवाले खराब हैं। यह कैसा न्याय है!

जो टट्टी फेंक कर जगह को साफ कर दे वह खराब है और जो टट्टी करके जगह गंदी कर दे वह अच्छा है। यह कैसा न्याय है और कौन ऐसा है जो टट्टी नहीं साफ करता है। सभी तो टट्टी साफ करते हैं। साधारण आदमी की कौन कहे, जगदगुरु, मंडलेश्वर, वेदाचार्य लोग सुबह-सुबह ही अपनी टट्टी साफ करते हैं। तब दूसरे की टट्टी को जो साफ कर दे वह बुरा कैसे हो गया। इस प्रकार कर्मकरों को जो घृणित कहा गया यह महाषड्यन्त्र है।

मजदूरों से अन्न पैदा करवा लिया और उनके पैर के नीचे रगड़े गये अन्न का भोग लगा लिया और उनको अछूत कह दिया। नाइयों से बाल बनवा लिया फिर नाइयों को अछूत कह दिया। जुलाहों से कपड़े बुनवाकर पहन लिया और जुलाहे को अछूत कह दिया। बढ़ई से फर्नीचर बनवा लिया और फिर उनको अछूत कह दिया। धोबी से गंदे कपड़े धुलवाकर साफ करवा लिया और धोबी को कह दिया कि तुम तो अछूत हो। जितने कर्मकर हैं उन सबको अछूत घोषित कर दिया गया और यह महादुर्भाग्य है।

पहले के जमाने में ऐसी बात नहीं थी। महाराज श्रीकृष्ण गायें चराते थे। उनके बड़े भाई बलराम हल चलाते थे। इसीलिए उनको हलधर नाम दिया गया है लेकिन पंडित लोग कहते हैं कि वे तो युद्ध में हल का उपयोग करते थे। पंडित लोग ऐसा कह दिये क्योंकि जबतक भारत आजाद नहीं हुआ था तबतक हल चलाना बहुत छोटा काम समझा जाता था। जब भारत आजाद नहीं हुआ था तब सवर्ण कहलाने वाले लोग हल की मूठ भी नहीं पकड़ सकते थे। यह बात मुझे पूरी तरह याद है कि कोई सवर्ण आदमी यदि घर फूंकता हो, दुराचार करता हो तो उसको अछूत कोई नहीं कहता था लेकिन अगर वह हल की मुठिया पकड़ लेता था तो उसे अजात कर देते थे। ऐसे पंडित लोग भला कब माननेवाले थे कि बलराम हल चलाते थे। इसलिए पंडितों ने लिखा कि वे हल नहीं चलाते थे किंतु वे हल को कंधे पर रखे रहते थे और जब युद्ध की जरूरत होती थी तब उसमें शस्त्र का प्रयोग करते थे। भला बताओ कि धनुष-बाण और तलवार से युद्ध करना सरल है कि हल से। वास्तविकता यह है कि वे हलधर थे और वे हल चलाते थे। हल चलाना कोई पाप नहीं है।

जितने वैदिक ऋषि हैं और जितने उपनिषद् के ऋषि हैं सब कर्मकर रहे हैं और इसीलिए साहेब ने कर्मकरों की पक्षधरता की। वे जहां पाले-पोषे गये, नीरू और नीमा के यहां, वे जुलाहे का काम करते थे। साहेब भी जुलाहे का काम किये हैं और उम्र बढ़ी तो वे अध्यात्म के प्रचार-प्रसार में बढ़ गये तब उनका कपड़ा बुनने का काम छूट गया होगा लेकिन जीवन भर भी वह काम करना होता तो बड़ा अच्छा रहता।

महाराज श्रीकृष्ण गाय चराये लेकिन आगे चलकर राजनीति में आगे बढ़े तब उनका गौचारण का काम छूट गया होगा लेकिन महाराज श्री कृष्ण को अगर बुढ़ापा में भी गाय चराना होता तो वे उसको बुरा न मानते। कर्मकरों के प्रति हमारी जो दृष्टि बनी वह बड़ी दूषित हुई। आज हमें इस बात को बदलना चाहिए। कबीर साहेब ने कर्मकरों की पक्षधरता की। हमें भी वह दृष्टि लानी चाहिए। छुआछूत है और उसको तो मानना पड़ेगा लेकिन छुआछूत का जो आधार मैं बताने जा रहा हूं वह वैज्ञानिक है। अगर हमारा हाथ अशुद्ध है तो हम अछूत हैं और जब उसे धो लिए तो अशुद्ध नहीं हैं। एक ब्राह्मण का लड़का टट्टी गया हो और वह टट्टी कर के आया हो तो वह भण्डार घर में जाने लायक नहीं है। उसे बिना हाथ-पैर धोये, बिना नहाये-धोये और बिना कपड़ा बदले भोजनालय में नहीं जाना चाहिए क्योंकि वह उस समय अशुद्ध है, अछूत है।

इसी प्रकार एक मेहतर का लड़का नहा-धोकर आया हो तो वह भोजनालय में जा सकता है क्योंकि वह अछूत नहीं है। वह साफ-सुथरा हो गया। ब्राह्मण का लड़का भी नहा-धो ले तो वह भी भोजनालय में जा सकता है। यही अशुद्धि और शुद्धि छूत और अछूत की परिभाषा होनी चाहिए। छूत और अछूत शुद्धि और अशुद्धि के आधार पर होनी चाहिए, जाति जो निरर्थक है उसके आधार से नहीं होनी चाहिए लेकिन आज भी शिक्षित समाज में छुआछूत का रोग है और ऊंच-नीच कहने का रोग है।

मेरा आप लोगों से निवेदन है कि आप लोग किसी से उसकी जाति बिलकुल न पूछें। मनुष्य की जाति तो है ही। मनुष्य की जाति मनुष्य है। फिर मनुष्य से जाति क्या पूछना है। हां, उसके वेष-भूषा, हाथ-पैर जबतक गंदे हैं तबतक उसको आप अछूत समझ सकते हैं।

एक पंडित, जो पूर्व परिचित थे, बहुत दिनों के बाद बड़े झटाके-से मुझसे मिले और कहे कि—"महाराज, सुनता हूं कि आप जाति-पांति नहीं मानते हैं।" मैंने कहा—"बिलकुल, मैं जांति-पांति मानता हूं। कौन आपसे कह दिया कि मैं जाति-पांति नहीं मानता हूं।"

उन्होंने कहा—"लोग ही तो कहते हैं कि साहेब जाति-पांति नहीं मानते हैं।" मैंने उनसे कहा कि "मैं बिलकुल जाति-पांति मानता हूं।"

उन्होंने कहा—"आप कैसे मानते हैं?"

मैंने बताया कि मैं तो कोई आता है तो दूर से ही उसकी जाति को पहचान लेता हूं। मैं दूर से ही जान लेता हूं कि वह कौन जाति का है।

उन्होंने पूछा—"महाराज, कैसे आप दूर से जान लेते हैं।"

मैंने कहा—"अगर मैं देखता हूं कि घोड़ा आ रहा होता है तो मैं जान लेता हूं कि वह घोड़ा की जाति का है। कोई हाथी आ रहा होता है तो मैं जान लेता हूं कि वह हाथी जाति का है। इसीप्रकार कोई मनुष्य आता है तो मैं जान लेता हूं कि वह मनुष्य आ रहा है और उसकी जाति मनुष्य है?"

तब उन्होंने कहा—"अरे साहेब! तब आप जाति-पांति नहीं मानते हैं।"

उनके हिसाब से जाति-पांति मानने का मतलब है कि मनुष्य को ब्राह्मण, क्षत्रिय, बनिया, धोबी, नाई, चमार, पासी, तेली, मुराव आदि माने तब जाति-पांति मानना हुआ और यही सबसे बड़ा सामाजिक अपराध है। इसलिए मनुष्य की जाति न पूछो। मनुष्य की जाति मनुष्य है बस। एक बार की घटना है। अयोध्या के उत्तर क्षेत्र में एक जगह मैं बैठा था और हमारे संत भी अलग-अलग पेड़ों के नीचे बैठकर ध्यान-समाधि का अभ्यास कर रहे थे। उसी समय एक पंडित जी आये जिनके यहां मैं निमंत्रित था। वे एक पुरोहित थे। उन्होंने संतों के सहित मुझे निमंत्रण दिया था। कुछ साधु उनके घर भोजन बना रहे थे। वे आये, मेरे पास बैठे और मुझसे पूछे—"क्या महाराज, ये जो संत बैठे हैं, इनमें कुछ ब्राह्मण भी तो होंगे?"

मैंने कहा—"इनमें तो सब के सब ब्राह्मण हैं। या तो ब्राह्मण हो चुके हैं या ब्राह्मणत्व की तरफ बढ़ रहे हैं।" मेरी बात उनकी समझ में न आयी। उन्होंने पूछा—"क्या महाराज, इनमें सब के सब ब्राह्मण हैं?" मैंने कहा—"बिलकुल हैं लेकिन आप जैसे नकली ब्राह्मण ये नहीं हैं।" तब वे हंसने लगे और कहा—"महाराज, क्या मैं झूठा ब्राह्मण हूं?" मैंने कहा—"बिलकुल आप झूठे ब्राह्मण हैं।" मैंने उनसे कहा—

जितेन्द्रियः धर्मपरः स्वाध्यायनिरतः शुचिः।
कामक्रोधौ वशौ यस्य तं देवा ब्राह्मणं विदुः॥

जो जितेन्द्रिय हो, धर्मपरायण हो, स्वाध्यायरत हो, अन्दर-बाहर पवित्र हो, काम और क्रोध को जिसने वश में कर लिया हो, वही ब्राह्मण है। विद्वान लोग उसे ही ब्राह्मण कहते हैं। इतना कहकर मैंने उनसे पूछा कि क्या आप ऐसे ब्राह्मण हैं? तब वे कहे कि महाराज, ऐसा ब्राह्मण मैं नहीं हूं।

मैंने कहा तभी तो मैंने कहा कि आप झूठे ब्राह्मण हैं और ये सब सच्चे ब्राह्मण हैं या ब्राह्मणत्व की तरफ अग्रसर हैं। इसीलिए कबीर साहेब ब्राह्मण थे, नानक साहेब ब्राह्मण थे। रविदास ब्राह्मण थे, गोस्वामी तुलसीदास जी ब्राह्मण थे, स्वामी दयानन्द ब्राह्मण थे, मोहम्मद साहेब ब्राह्मण थे, महात्मा ईसा ब्राह्मण थे क्योंकि ये सब ब्रह्म की तरफ, आत्मा की तरफ प्रगतिशील थे या पहुंचे हुए थे और यही बात आप उपनिषदों में भी पायेंगे। उपनिषदों में जहां आता है कि ब्राह्मण पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकैषणा को छोड़कर आत्मज्ञान में रमता है। उस ब्राह्मण का अर्थ ही है वह व्यक्ति जो ब्रह्म में निष्ठावाला हो। ब्रह्म का मतलब है आत्मा, निजस्वरूप। जो सबका अपना स्वत्व है वही ब्रह्म है और अपना स्वत्व, अपना आपा, अपना स्वरूप, जो समझ लिया और अपने स्वरूप में स्थित हो गया वह ब्राह्मण ही है। ऐसा उपनिषदों में आप बारम्बार देखेंगे लेकिन आगे चलकर यह विचार बिलकुल छूट गया और जाति-पांति के कीचड़ में लोग फंस गये।

एक दिन ऋषियों ने कहा था—"कृणवन्तो विश्वमार्यम्" विश्व को आर्य बनाओ। तो विश्व को आर्य बनाने का मतलब ऐसा नहीं कहा गया था जैसा आजकल के साम्प्रदायिक लोग करते हैं। वे दूसरे मत वालों को छीन-झपटकर और फुसलाकर अपने सम्प्रदाय में दीक्षित कर लेते हैं। ऐसा उन्होंने कहीं नहीं कहा था। "आर्य बनाओ" से उनका मतलब था कि श्रेष्ठ बनाओ और इसीलिए वे जाति-पांति की भावना से रहित थे।

अथर्ववेद में मंत्र आया है—"समानी प्रपा सहवो अन्नभागः" इसका अर्थ है हमारी पौशाला एक हो और हम एक साथ भोजन करें। इसका मतलब है कि ये बातें हमारे मूल में भी हैं। भारतीय परम्परा के मूल में ही ये

सारी स्वस्थ बातें हैं लेकिन आगे चलकर तो पढ़ना-लिखना सब छूट गया और ऐसी नयी-नयी चीजें पोथी-पुराणों में भर दी गयीं कि वहीं तक आदमी सीमित हो गया। कबीर साहेब ने उन्हीं सब बातों की समीक्षा की और एक स्वस्थ स्वरूप समाज के सामने रखा और उन्होंने कहा—

पंडित देखहु हृदय विचारी, को पुरुषा को नारी।
सहज समाना घट घट बोलै, वाके चरित अनूपा।
वाको नाम काह कहि लीजै, न वाके वर्ण न रूपा।
तैं मैं क्या करसी नर बौरे, क्या मेरा क्या तेरा।
राम खुदाय शक्ति शिव एकै, कहु धौं काहि निहोरा।
वेद पुराण कितेब कुराना नाना भांति बखाना।
हिन्दू तुरुक जैनि और योगी, ये कल काहु न जाना।

जो यह एकता की मधुरता है इसको हम नहीं समझ रहे हैं। इसमें शब्दों का ही अंतर है। वस्तुतथ्य तो एक है, उसमें कोई अंतर नहीं है।

कबीर साहेब ने जो चाहा था वह आज बहुत अंशों में हो रहा है। उन्होंने चाहा था कि मनुष्य को कोई नीच न कहे और आज सरकार के संविधान में ऐसा ही विधान है कि कोई किसी को नीच नहीं कह सकता। यदि किसी को कोई जाति के आधार पर नीच कहता है तो दण्डित किया जा सकता है। कबीर साहेब चाहते थे कि हर मानव का बच्चा अपनी योग्यता के बल पर ऊंचे पदों पर जाये। आज सरकार में कानून है कि सभी के बच्चे आज जज हो सकते हैं, कलेक्टर और कमिश्नर हो सकते हैं। जैसे ब्राह्मण का लड़का ऊंचे पदों पर जा सकता है उसी प्रकार एक चमार का भी लड़का ऊंचे पदों पर जा सकता है। कबीर साहेब के विचारों की यह सच्ची विजय है। कबीर साहेब का नाम लिया जाये चाहे न लिया जाये कोई फर्क नहीं पड़ता। आज उनके ही विचारों के अनुसार सरकार ने कानून बनाया है और इसी से कोई समाज और कोई देश उन्नति के पथ पर आगे बढ़ सकेगा।

(क्रमशः)

दोहे

रचयिता—राधाकृष्ण कुशवाहा

सुद्गुरु भगवतरूप हैं, महिमा महा अनूप।
करुणा करके शिष्य को, करते गुरु का रूप॥ 1॥

धन रहते अज्ञान वश, फिरता रहा बेहाल।
हीरा को घर में लखा, गुरुवर किये निहाल॥ 2॥

चूनर साफ किया नहीं, किया न प्रिय से नेह।
पहन क्या कैसे जायेगी, तूँ अपने पति गेह॥ 3॥

मन की चाल कुचाल की, समझ नहीं आसान।
सद्ग्रन्थ सत्संग बिनु, कैसे हो पहचान॥4॥

सेवा में जो कर उठे, महिमा कही न जाय।
वे पवित्र उन होठ से, जो प्रभु स्तुति गाय॥ 5॥

वैभव बल पद बुद्धि यश से, है बाहर सम्पन्न।
आत्म ज्ञान बिनु जीवना, भीतर लगे विपन्न॥ 6॥

दर्पण पूछे आप से, चेहरा देखे रोज।
क्या मन भी निर्दोष है, किया कभी न खोज॥ 7॥

कैसी है यह मूढ़ता, चेहरा दाग न धोय।
बार-बार दर्पण मले, कस निदाग वह होय॥ 8॥

खिला पुष्प तेरी गली, तूँ न जाना मोल।
भ्रमर दूर का आ पिया, रस मकरन्द अमोल॥ 9॥

कभी न सुधरे नीच जन, अमृत बोलो तुम।
घी भी मले न सीध हो, ज्यों कुत्ते की दुम॥10॥

उदधि मथे निकले रतन, दधि मथते नवनीत।
निकले बुद्धि मथन से, ज्ञान वर्णनातीत॥11॥

बड़ा जो होता राजपद, धन परिवार करोर।
तो राजा सत्सन्त पद, क्यों झुकते करजोर॥12॥

होत समस्या हल सदा, मंथन पाय विचार।
सरसो को कोल्हू मथे, तेल की निकले धार॥13॥

बचपन से पचपन हुआ, अचकन हुआ पुरान।
जीवन पुस्तक न पढ़े, पढ़ते वेद कुरान॥14॥

ऐ नलिनी! क्यों हो रही, चन्दा बिना उदास।
घूँघट टार निरख करो, वह तो तेरे पास॥15॥